दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९६ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २६ अंक नं० ६

भगवान महावीर को स्मरणांजलि

हे प्रभो! आज ढाई हजार वर्ष होने पर भी यह भारत देश आपको भूला नहीं है... अनेक कठिनाइयों के बीच भी आपका धर्मशासन जयवंत वर्त रहा है... आपके द्वारा प्रवाहित धर्मगंगा को वीतरागी संत-मुनियों ने सूखने नहीं दिया... वह वीतरागी अमृत आज भी भारत के लाखों जीवों को नवजीवन का आनंद दे रहा है... आपके परम उपकार का भारत के भव्य जीव अत्यंत भक्तिपूर्वक स्मरण करते हुए आपका निर्वाणोत्सव मना रहे हैं।

जय महावीर!

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

नवम्बर : १९७० वार्षिक मूल्य ३) रुपये (३०६) एक अंक २५ पैसा [आश्विन : २४९६

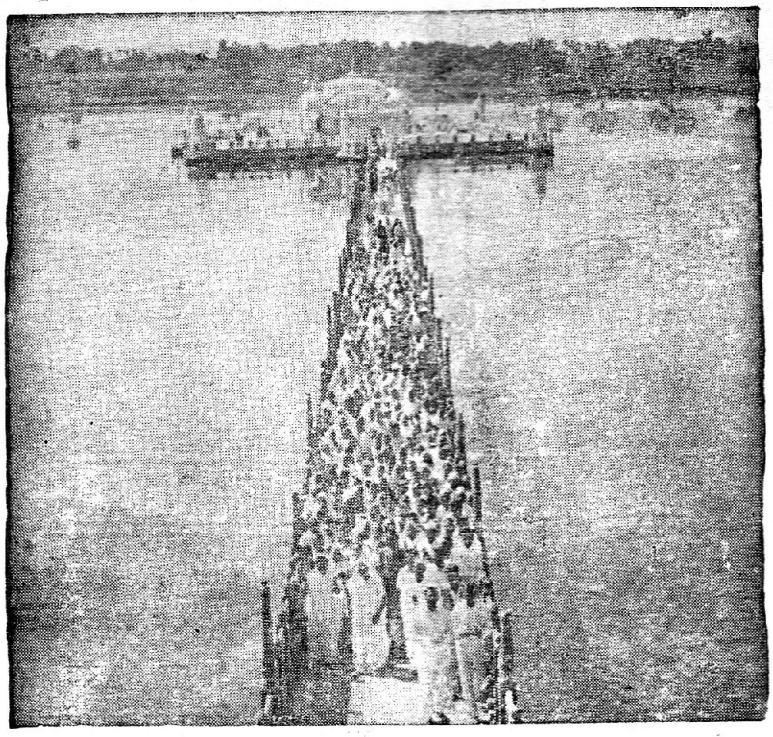

भगवान महावीर स्वामीकी निर्वाण-भूमि
पावापुरी सिद्धक्षेत्रका एक सुन्दर दृश्य

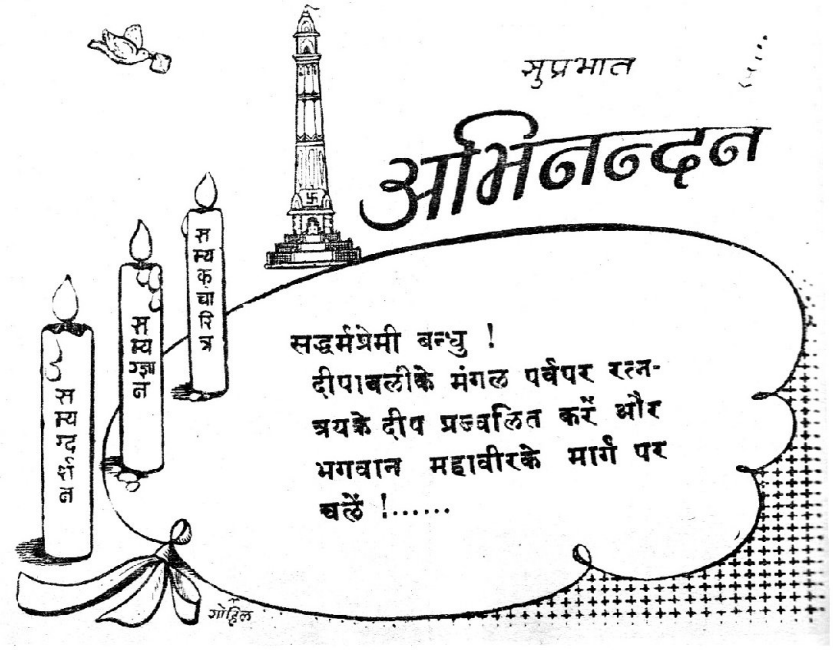

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 संपादक : श्री ब्र० गुलाबचंद जैन 卐

नवम्बर : १९७० ☆ आश्विन : वीर नि० सं० २४९६, वर्ष २६वाँ ☆ अंक : ६

महावीरस्वामी का मार्ग

दीपावली अर्थात् भगवान महावीर का निर्वाण-महोत्सव

❀ उन महावीर भगवान ने क्या किया ?

पहले वे राग-द्वेष-अज्ञान सहित थे; पश्चात् आत्मा के सर्वज्ञस्वभाव की प्रतीति करके वीतरागभाव प्रगट किया और सर्वज्ञ हुए—मोक्ष प्राप्त किया।

❀ महावीर भगवान ने क्या कहा ?

स्वयं जो किया, वही कहा—उसी का उपदेश दिया कि—आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव रागादि से रहित है, उसे पहिचानो और उसमें एकाग्रता द्वारा वीतरागभाव प्रगट करके मुक्ति प्राप्त करो!

❀ उन महावीर भगवान की यथार्थ पहिचान कैसे हो ?

भगवान ने आत्मा का जैसा सर्वज्ञस्वभाव बतलाया है, वैसा जानकर स्वयं अनुभव करे और राग से भिन्न हो, तब उस अनुभवरूप चेतना द्वारा भगवान की सच्ची पहिचान होती है। और इसप्रकार भगवान महावीर को पहिचानकर उनके मार्ग पर चलनेवाला स्वयं अल्पकाल में महावीर भगवान जैसा होकर मोक्ष प्राप्त करता है। इसलिये हे जीव! तुझे महावीर बनना हो तो उनके ऐसे वीतराग मार्ग को पहिचान।

जय महावीर

आत्मा को पहिचानने का सच्चा लक्षण

[राजकोट में प्रवचनसार गाथा १७२ पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से (संवत् २४९६)]

अहा! वीतरागमार्ग स्वसन्मुखता का मार्ग है, पराश्रय से इसको पहिचाना नहीं जा सकता।

❀ ❀ ❀

स्वसन्मुख हुए बिना देव-गुरु आदि की सच्ची पहिचान नहीं हो सकती।

आत्मा शरीर नहीं है—ऐसा आचार्यदेव ने समझाया है; तब जिज्ञासु शिष्य पूछता है कि जब शरीर, वह आत्मा नहीं तब शरीरादि समस्त परद्रव्यों से भिन्न आत्मा को किस साधन के द्वारा पहिचाना जावे? आत्मा का ऐसा कौन सा असाधारण स्वलक्षण है कि जिससे आत्मा स्पष्टतया पर से भिन्न अनुभव में आ सके?—इसप्रकार निजस्वरूप को जानने की जिसको रुचि तथा लगन है, उसको आचार्यदेव इस गाथा द्वारा आत्मा का स्वरूप बतलाते हैं।

आत्मा का लक्षण चेतना है; स्वयं की चेतना स्वयं के स्वद्रव्य के ही आश्रित है, इसलिये चेतना के द्वारा स्वद्रव्य अनुभव में आता है।

ऐसा जो चेतनालक्षण से लक्षित आत्मा है, वह अलिंगग्राह्य है; उसको 'अलिंगग्रहण' कहकर बीस अर्थ के द्वारा अत्यंत स्पष्ट करके आत्मा का स्वरूप समझाते हैं। इन बीस अर्थों का यह विवेचन है।

ज्ञानी आत्मा की पहिचान किसप्रकार की जावे?

ज्ञानस्वरूप आत्मा लक्ष्य में आवे, तब दूसरे ज्ञानी आत्मा की सच्ची पहिचान हो सकती है। राग से पृथक् होकर ज्ञान के लक्ष्य से ज्ञानी की पहिचान की जा सकती है। क्योंकि जिस शुद्धात्मा की पहिचान करना है, उस जातिरूप स्वयं परिणमन किये बिना उसकी सच्ची पहिचान नहीं की जा सकती। ज्ञानस्वरूप आत्मा को पहिचानने के लिये स्वयं में ही

इन्द्रियातीत ज्ञानरूप परिणमन हो, तब ही आत्मा पहिचाना जा सके। स्वयं में अतीन्द्रियपना प्रगट हुए बिना, अकेले परोक्ष-अनुभव के द्वारा अतीन्द्रियपना प्राप्त किये हुए आत्मा की पहिचान नहीं की जा सकती। इसप्रकार शुद्ध आत्मा केवल अनुमान के द्वारा पहिचाना नहीं जा सकता। इसलिये वह अलिंगग्रहण है; केवल अनुमान के द्वारा जानने में आवे, वह शुद्धात्मा नहीं; शुद्धात्मा तो प्रत्यक्ष ज्ञान से जानने में आता है।

जिसप्रकार अन्य के द्वारा यह आत्मा केवल अनुमान द्वारा नहीं पहिचाना जा सकता, उसीप्रकार आत्मा स्वयं केवल अनुमान के द्वारा पर को पहिचाने, ऐसा भी नहीं है अर्थात् अनुमातामात्र नहीं है; किंतु स्वयं प्रत्यक्षरूप हो करके इन्द्रियों से पृथक् होकर, पर को जानता है। छह द्रव्य को जानने की शक्तिवाला आत्मा, केवल अनुमान द्वारा छह द्रव्यों को नहीं जानता; स्वसंवेदन-प्रत्यक्षपूर्वक अनुमान द्वारा जाने, वह सच्चा है। सर्वज्ञस्वभाव की प्रतीतिपूर्वक परज्ञेयों को जाने, ऐसा आत्मा है; अर्थात् आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। जाननेवाले को स्वयं को जाने बिना पर का सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता।

अकेले रागरूप व्यवहार की बात तो दूर रही, अकेले परोक्ष ज्ञानरूप जो व्यवहार, इससे कार्य होना माने, वह भी सच्चा आत्मा नहीं; अकेला अनुमान ज्ञान, वह आत्मा नहीं, तथा उसके द्वारा आत्मा जानने में नहीं आ सकता; केवल अनुमान द्वारा आत्मा जानता नहीं। श्रवण के लक्ष्य से होनेवाले ज्ञान द्वारा आत्मा पहिचाना नहीं जा सकता।

यह तो ज्ञानस्वभावी आत्मा का घोलन-मंथन है। बीसों बोल में ज्ञानस्वभावी आत्मा का ही मंथन चलता है। अंतर्मुख होकर ज्ञानस्वभावी आत्मा को स्वसंवेदन में लिया, उसी समय उसमें ये बीसों अर्थ समा जाते हैं; उसने अपनी चेतना के द्वारा अलिंगग्रहण आत्मा को प्राप्त कर लिया।

आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। चैतन्य का गुप्त चमत्कार है; जो अनंत ज्ञान-आनंद की खान है, इसकी जगत को खबर नहीं; क्षणिक अंश इन्द्रियज्ञान अथवा पुण्य-पाप, उसी को वह अपना स्वरूप मानता है किंतु अखंड स्वभाव को दृष्टि में नहीं लेता। वस्तु नित्य-परिणामी है। नित्य-परिणामी नहीं हो तो दु:ख दशा पलटकर सुख का कार्य हो सकता नहीं। नित्यस्वभाव के सन्मुख दृष्टि करे तो महान निधान हाथ में आ जाता है।

आत्मा जाननेवाला है; वह जानने का कार्य इन्द्रिय द्वारा नहीं, राग द्वारा नहीं, केवल अनुमान द्वारा नहीं; किंतु प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा करे, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा है। शुद्ध उपयोग के द्वारा ऐसे आत्मा की प्राप्ति होती है। अन्य प्रकार से माने तो आत्मा की प्राप्ति हो सकती नहीं। ज्ञातास्वभाव है, वह अपने स्वभाव के अंश द्वारा कार्य करनेवाला है। स्वभाव से विपरीत ऐसे इन्द्रियों तथा रागादि भावों के द्वारा जानना माने, उसको आत्मा प्राप्त नहीं हो सकता। भले ही मंद राग हो किंतु वह राग की जाति का है, वह ज्ञान की जाति का नहीं है, ज्ञान से वह विरुद्ध है; उस राग में ऐसी शक्ति नहीं कि वह आत्मा का स्पर्श करे–अनुभव करे।

आत्मा को स्वयं के उपयोग–चिह्न में परज्ञेयों का अवलंबन नहीं है। परज्ञेयों का अवलंबन लेकर होनेवाला सच्चा उपयोग नहीं है। उपयोग में दिव्यध्वनि का अवलंबन नहीं है। उपयोग–चिह्न वही कहा जा सकता है कि जो अपने आत्मा का ही अवलंबन लेकर वर्तन करे। बाहर के बैकुंठ में (अर्थात् स्वर्ग में) किंचित् भी सुख नहीं, वहाँ कहीं भगवान विराजमान नहीं हैं; अंतर में ज्ञान तथा आनंद से परिपूर्ण अपना आत्मा, यही सच्चा बैकुंठ है; उसके अंदर जाने से चैतन्य भगवान का मिलाप होता है।

चैतन्य का जो उपयोग है, वह स्वयमेव (पर के अवलंबन से रहित) जानने के स्वभाववाला है। पर का अवलंबन अर्थात् भगवान का, शास्त्र का, गुरु का किसी भी परवस्तु का अवलंबन लेकर रुकनेवाला उपयोग, अशुद्ध उपयोग है, ऐसे उपयोग में शुद्धात्मा लक्षित नहीं हो सकता, इसलिये आत्मा के आश्रित उपयोगलक्षण में किसी का भी अवलंबन नहीं है। पर के अवलंबन में तो राग है, वह कहीं आत्मा का चिह्न नहीं है। राग में किंचित् भी सुख नहीं है। राग से भिन्न ऐसे निर्विकल्प अतीन्द्रिय उपयोग में ही परम सुख है। आनंद के धाम प्रभु को यह लज्जा–शर्मजनक शरीर धारण करना शोभा नहीं देता। उपयोग लक्षण में राग का या शरीर का ग्रहण नहीं है।

पर की ओर झुकनेवाले भाव को आत्मा का लक्षण नहीं कहा जाता। अंतर में झुककर आत्मा के स्वभाव में एकता करनेवाला तथा राग से भिन्न होनेवाला वह उपयोग ही आत्मा का लक्षण है; उसमें आनंद है। स्वज्ञेय–आत्मा के अतिरिक्त परज्ञेय के साथ उपयोग का संबंध नहीं है। परावलंबी उपयोग के द्वारा आत्मा को पहिचाना नहीं जा सकता, इसलिये उस उपयोग को

आत्मा का स्वरूप नहीं कहा जात। ऐसा आत्मा जिस समय अनुभव में लिया, उस समय के उपयोग में परज्ञेयों का अवलंबन नहीं है।

आत्मा की अनंत शक्तियों में एक शक्ति 'स्व-स्वामित्वसंबंध' नाम की है; किंतु उस शक्ति का कार्य ऐसा नहीं कि आत्मा पर का स्वामी बने। आत्मा का स्व-स्वामित्वसंबंध स्वयं में ही पूर्ण होता है, पर से संबंधित नहीं। आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों के साथ आत्मा का स्व-स्वामीपना है। निर्मल उपयोगरूप आत्मा स्वयं परिणमन करता है; कहीं बाहर से यह उपयोग नहीं लाता। चैतन्य आत्मा को परद्रव्यों से विभक्तपना है तथा ज्ञानरूप स्वधर्म से अविभक्तपना है।—ऐसी निर्मल पर्याय सहित शुद्धात्मा को एकपना तथा ध्रुवपना है।—ऐसा प्रवचनसार की १९२वीं गाथा में कहा है। स्वभाव के अवलंबन से प्रगट होनेवाली, तथा किसी के भी अवलंबन से रहित ऐसी ज्ञानपर्यायवाला आत्मा है। बाहर से उसका ग्रहण नहीं, इसलिये उसे अलिंगग्रहणपना है। ज्ञान में बाहर का अवलंबन जो मानता है, उसने ज्ञानस्वरूप आत्मा को पहिचाना नहीं है, वह वास्तव में बाहर से ही ज्ञान का आना मानता है। ज्ञान तो आत्मा में से ही उल्लसित होता है। जिसप्रकार ज्वार-भाटा के समय समुद्र स्वयमेव अपने मध्यबिंदु से ही उछलता है, उसीप्रकार आत्मा स्वयमेव अपने ज्ञानस्वभाव में से ही उल्लसित होकर निर्मल उपयोगरूप परिणमन करता है; वह उपयोग किसी के द्वारा हरा नहीं जा सकता।

साधक के उपयोग के अप्रतिहतपने को दर्शानेवाला यह मांगलिक बोल है। आत्मा के स्वभाव की ओर जो उपयोग झुका, वह आत्मा के साथ अभेद हो गया, उसको अब कोई नष्ट नहीं कर सकता; वह उपयोग पीछे नहीं हटता। उपयोग ने शुद्ध चैतन्य को ध्येय बनाया, उस अप्रतिहत के ध्येय से केवलज्ञान प्राप्त करेगा। ध्येय में लीन होनेवाला उपयोग कभी चलित नहीं होगा, स्वध्येय का त्याग करके अन्य को ध्येय नहीं बनायेगा। राग से भिन्न हो करके चैतन्यधाम में जो उपयोग आया, वह उपयोग अब जगत् की किसी भी प्रतिकूलता में हटनेवाला नहीं; आत्मा तथा उसका उपयोग भिन्न नहीं होते, उपयोग का आत्मा से मिलन हुआ है, वह अब कभी भिन्न नहीं होगा।—वाह! देखो, यह साधक के अप्रतिहत भाव की ललकार।

परमात्मस्वरूप अंतर में ही पड़ा है, उसका लक्ष्य करके जो उपयोग एकाग्र हुआ उसका नाश नहीं होता, साधक को कोई भी ऐसा कर्म नहीं रहा जो उसके उपयोग को नष्ट करने

में निमित्त हो। उपयोग का नाश होता ही नहीं, फिर नाश करनेवाले का निमित्त ही कैसा? बहिर्मुख वृत्तियों से भिन्न होकर अंतरोन्मुख हुआ उपयोग, वह स्वभावभूत हो गया, स्वभाव का नाश होता नहीं, इसीप्रकार उपयोग का भी नाश नहीं होता। स्वद्रव्य की ओर झुका हुआ उपयोग, वह कभी पीछे नहीं हटता। उपयोग ने जहाँ चेतन का रूप धारण किया, वहीं उसकी जाति विकार से भिन्न हो गई। जब रावण के आधीन सीताजी नहीं हुईं, तब रावण से किसी ने कहा कि सीता रामचंद्रजी के अतिरिक्त अन्य के साथ प्रसन्न नहीं होगी, इसलिये हे रावण! तू राम का रूप धारण करके सीताजी के पास जायेगा तो सीताजी तुझ पर प्रसन्न हो जायेंगी। तब रावण कहता है कि—लेकिन जब मैं राम का रूप धारण करता हूँ, तब मेरे भाव पलट जाते हैं, विकारी वृत्तियाँ रहती नहीं; इसप्रकार परभावों में दौड़नेवाली वृत्तियाँ जब अंतर्मुख आतमराम की ओर झुकें तब वे शुद्ध हो जाती हैं, उनमें विकार रहता नहीं। इसप्रकार की शुद्ध परिणतिरूप परिणमन होनेवाले उपयोग का कोई नाश नहीं कर सकता। अप्रतिहत उपयोग वह महान् मांगलिक है।

महावीर के मार्ग पर...

भगवान महावीर के बतलाये हुए मार्ग का अनुकरण करना ही उनका निर्वाणोत्सव मनाने की सबसे अच्छी रीति है।

वीर प्रभु जैसे परम वीतरागी संतों का स्मरण करके विचार करना चाहिये कि—उन्होंने किसप्रकार आत्मसाधना की और हमें कौनसा मार्ग बतलाया है?....

भगवान महावीर ने सांसारिक सुख-सुविधाओं को तिलांजलि देकर शाश्वत सुख की प्राप्ति का मार्ग ग्रहण किया और आनंदस्वरूप आत्मा को ध्येय बनाकर, अभेद रत्नत्रय की आराधना द्वारा मोक्ष-सुख प्राप्त किया। समस्त संसारी जीवों को भी उन्होंने मोक्षमार्ग का ही उपदेश दिया है। हम उनका उपदेश ग्रहण करके उनके दरशाये हुए मार्ग पर चलें....

अभेद को अभिनंदन

आत्मा के स्वभावरूप एक ज्ञानपद, उसके अनुभव से आत्मलाभ

आत्मा एक परम पदार्थ है और वह ज्ञानस्वरूप है; मति-ज्ञानादि भेद वे एक ज्ञानपद को भेदते नहीं, परंतु उलटे वह तो अभेद का अभिनंदन करते हैं।—यह समझाकर आचार्य भगवान 'आत्मलाभ' करवाते हैं।

[समयसार, गाथा २०४-२०५]

शिष्य ने प्रश्न किया था कि आत्मा का निजपद कैसा है ? यह बतलाइये। उसके उत्तर में आचार्यदेव आत्मा का निजपद बतलाते हैं। परद्रव्यों से भिन्न, परभावों से भिन्न, तथा अपने ज्ञानादि स्वभावों से अभिन्न ऐसा निजपद है, उसके अनुभव से मोक्षपद प्राप्त किया जाता है।

आत्मा एक परम वस्तु है। आत्मा कहो या ज्ञान कहो; इस ज्ञानस्वरूप एक आत्मा को अनुभव करनेवाली जो मतिश्रुत इत्यादि ज्ञानपर्यायें हैं, वह अभेद को भेदती नहीं, किंतु अभेद का अभिनंदन करती हैं। एकरूप ऐसा जो आत्मा का परम ज्ञानस्वभाव, उस स्वभाव का अनुभव करनेवाली पर्यायें आत्मा की एकता को भंग नहीं करतीं किंतु उसका अभिनंदन करती हैं; इसलिये यह मतिज्ञानादि पर्यायें एक ज्ञानपद में ही समा जाती हैं। ज्ञान के सर्व भेद ज्ञान में ही तन्मय हैं।

जिसप्रकार प्रकाशस्वभावी जगमगाता सूर्य है; बादलों के भेदन-अनुसार सूर्य की किरणों में जो हीनाधिकतारूप भेद पड़ते हैं, वे प्रकाश की किरणों के भेद सूर्य के प्रकाशस्वभाव को सिद्ध करते हैं। वे किरणें कहीं प्रकाशस्वभाव का भेदन नहीं करतीं किंतु उल्टे सिद्ध करती हैं कि यहाँ प्रकाशस्वभावी पूर्ण सूर्य है। उसीप्रकार आत्मा चैतन्यसूर्य है। मतिज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि जो ज्ञान के भेद हैं, वह आत्मा के चैतन्यस्वभाव को प्रसिद्ध करते हैं; ज्ञानभेद एक ज्ञानस्वभाव को भेदते नहीं किंतु उसमें तन्मय होकर उल्टे उसका अभिनंदन करते हैं; ज्ञानपर्यायों की एकता राग के साथ नहीं, किंतु चैतन्यस्वभाव के साथ उनकी एकता

है।—ऐसा अभेदरूप एक ज्ञानस्वभाव का अनुभव, वह मोक्ष का उपाय है। यही निजपद है। अहो, ज्ञान के द्वारा ही निजपद की प्राप्ति होती है, इसके अतिरिक्त शुभराग के क्रियाकांड द्वारा या अन्य किसी प्रकार ज्ञानपद की प्राप्ति होनेवाली नहीं। ज्ञान की प्राप्ति अर्थात् ज्ञानस्वभाव का अनुभव तो सजातीय ऐसे ज्ञानभाव के द्वारा ही होती है, किंतु विजातीय ऐसे रागादि अज्ञानभाव द्वारा ज्ञानपद का अनुभव हो सकता नहीं, अतः ज्ञान का अनुभव ही मोक्ष का उपाय है।

ऐसे आत्मस्वभावभूत ज्ञान का अवलंबन लेने से आत्मलाभ होता है। देखो, यह आत्मा के लाभ की मंगल बात है। दिवाली को लक्ष्मी-पूजन में 'लाभ-शुभ' ऐसा लिखते हैं, इसमें अज्ञानी जड़ की लक्ष्मी के लाभ की भावना भाते हैं; यहाँ तो आचार्यदेव आत्मा का लाभ प्राप्त हो तथा आत्मा का अपूर्व नवीन वर्ष प्रारंभ हो—ऐसी मंगल बात समझाते हैं। भाई, राग से पार ऐसा अकेला ज्ञानस्वभावी तेरा आत्मा है, उस स्वभाव मात्र का अवलंबन करने से तुझे तेरे अपार चैतन्यनिधान का लाभ प्राप्त होगा, आत्मवैभव का तुझे लाभ प्राप्त होगा। यही सच्चा लाभ है।

धर्मी को आत्मा के ज्ञानस्वभाव का अनुभव होने के बाद पर्याय में शुद्धता के प्रकारों में वृद्धि होती जाती है, उसमें शुद्धता के अनेक प्रकार हैं। फिर भी उन अनेक भेदों पर धर्मी का लक्ष्य नहीं; उस शुद्धता का प्रत्येक भेद सामान्यस्वभाव के साथ एकता करके उसी का अभिनंदन करता है। अर्थात् वह ज्ञानपर्यायें अभेद स्वभाव की एकता का भेदन नहीं करती, किंतु उसमें तन्मय होकर अभेद का अभिनंदन करती हैं।

देखो, यह अभिनंदन! किसका अभिनंदन करना? कि पर्याय को अंतर्मुख करके अभेद स्वभाव का ही अभिनंदन करना। पर्याय में शुद्धता की वृद्धि होने पर भी एकता भंग नहीं होती। धर्मी जीव, राग का अभिनंदन नहीं करता, उसका स्पर्श नहीं करता, किंतु पर्याय को एकत्व स्वभाव के साथ अभेद करके आनंदसहित वह एकत्व का ही अभिनंदन करता है, उसी को भेंटता है। इसमें महान आत्मलाभ होता है तथा मोक्षपद की प्राप्ति होती है। महावीर भगवान ने ऐसे ज्ञानपद का अभिनंदन करके मोक्षपद को प्राप्त किया... तथा ऐसा ज्ञानपद जगत को बतलाया। हे जीवो! तुमको मोक्ष की भावना हो तो अपने ज्ञानस्वभावरूप निजपद को पहिचानकर उसका अवलंबन लो... उसी का तन्मयतापूर्वक ध्यान करो।

मुमुक्षुओं को निजपद की प्राप्ति के लिये क्या करना? उसकी यह बात है।

जो ज्ञानमय एक आत्मस्वभाव है, उसका ही अवलंबन लेना; उसके अवलंबन से ही निजपद की प्राप्ति होती है। रागादिभाव परपद है, तथा ज्ञानस्वभाव के अवलंबनमय जो निर्मल पर्याय हुई, वह स्वपद है। स्वालंबन से निर्मल पर्याय प्रगट हुई, तब निजपद की प्राप्ति हुई। द्रव्य-गुण त्रिकाल शुद्ध ही थे, वैसी शुद्ध पर्याय प्रगट हुई, इसका नाम निजपद की प्राप्ति हुई है। इसमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आ गये। ऐसे निजपद की प्राप्ति में राग का किंचित् भी अवलंबन नहीं, भेदों का अवलंबन नहीं, एकरूप ज्ञानस्वभाव का ही अवलंबन है।

देखो, इसमें सातों तत्त्व बतला दिये—

(१) प्रथम तो आत्मा एक ज्ञानस्वभावी वस्तु है; तथा उसका अवलंबन लेने से निजपद की प्राप्ति होती है अर्थात् आत्मा का लाभ प्राप्त होता है। ऐसा कहकर शुद्ध जीवतत्त्व बतलाया।

(२) अनात्मा का परिहार हो जाता है, ऐसा कहकर, शुद्ध जीव में अजीव का अभाव बतलाया।

(३) ज्ञानधारा में राग-द्वेष-मोह होते नहीं तथा कर्म का आस्रव होता नहीं, अर्थात् शुद्धदशा में आस्रव का अभाव बतलाया।

(४) ज्ञानभाव में कर्म आस्रव होता नहीं—ऐसा कहकर संवर बतलाया।

(५) फिर से कर्म बँधते नहीं—ऐसा कहकर बंध का अभाव बतलाया।

(६) पूर्व में बाँधा हुआ कर्म निर्जरित हो जाता है—ऐसा कहकर निर्जरातत्त्व बतलाया।

(७) तथा समस्त कर्म का अभाव होकर मोक्ष हो जाता है—ऐसा कहकर मोक्षतत्त्व बतलाया।

—ऐसा ज्ञानस्वभाव के अवलंबन का फल है। उपादेयरूप संवर-निर्जरा-मोक्ष प्रगट हुए, तथा हेयरूप आस्रव-बंध छूटे, अनात्मा से भिन्न (अर्थात् जड़ से तथा रागादि से भिन्न) ऐसा शुद्ध ज्ञानमय निजपद अनुभव में आया और आत्मा का लाभ हुआ। इसप्रकार ज्ञान के अनुभव की अपार महिमा है। अहो, चैतन्यभगवान अद्‌भुत निधिवाला ज्ञानसमुद्र, वह अपनी स्वाभाव पर्याय में डोलता है—उल्लसित होता है; आनंदसहित उछलती ज्ञानपरिणतिरूपी

तरंगों के साथ उसका रस अभिन्न है। अहो जीवो! तुम ऐसे ज्ञानसमुद्र को देखो; ज्ञानपद की अद्भुत महिमा को अनुभव में लो–उसके अनुभव के द्वारा सर्व सिद्धि होती है।

अद्भुत निधिवाला चैतन्य-रत्नाकर आनंद से डोलता है

जिसप्रकार समुद्र में निर्मल तरंगें उछलती हैं, उसीप्रकार स्वानुभव से चैतन्यसमुद्र में निर्मल ज्ञान–आनंद पर्यायों की तरेंगे उछलती हैं... समुद्र उछलता है तो उसमें से निर्मल दशा के फवारे प्रगट होते हैं। जो ज्ञानरस है, वह समस्त भावों को पी गया है, अनंतगुण का रस ज्ञानरस में समा जाता है; उस ज्ञानरस में समस्त पदार्थों को जान लेने की शक्ति है। स्वानुभव होते ही चैतन्यसमुद्र में निर्मल पर्यायें स्वयमेव उछलती हैं। चैतन्यवस्तु का स्वरूप ही ऐसा है कि उसका स्वसंवेदन होते ही निर्मल–निर्मल पर्यायोंरूप वह परिणमित होती है... अहा! स्वानुभव में आनंद का समुद्र उछलता है। देखो, यह चैतन्य का रस! वह निर्मल पर्यायों के साथ अभिन्न है। निर्मल–निर्मल अनेक पर्यायें होती जाती हैं किंतु वह सर्व पर्यायें एक ज्ञानस्वभाव के साथ अभिन्न हैं, इसलिये वह पर्यायें अभेद स्वभाव को भंग नहीं करती किंतु उसको अनुभव में लेकर प्रसिद्ध करती हैं, उसका अभिनंदन करती हैं–मिलाप करती हैं।

अहो, यह भगवान आत्मा अद्भुत निधिवाला चैतन्यरत्नाकर है, चैतन्यरत्नों से भरा हुआ अद्भुत समुद्र है, वह अपनी ज्ञानपर्यायोंरूपी तरंगों के द्वारा डोलता है, आनंद से उल्लसित होता है। उन ज्ञानपर्यायोंरूपी तरंगों के साथ आत्मा का रस अभिन्न है। पर्याय अंतर में अभेद हो जाने से वहाँ चैतन्य–समुद्र में निर्मलपर्यायें अपने आप स्वतः उल्लसित होती हैं, इन ज्ञान–आनंद पर्यायों में चैतन्यरत्नाकर दोलायमान है। इसप्रकार धर्मी जीव पर्याय–पर्याय में अपने अखंड चैतन्य भगवान को देखता है। अहो, यह भगवान आत्मा अद्भुत चैतन्यनिधिवाला समुद्र है, अनंत गुणों के रत्नों से भरा हुआ है। ऐसे अपने निज–निधान को हे जीवो! तुम अपने अंतर में देखो।

स्वयंभूरमण समुद्र ही ऐसा है कि जिसकी रेती (बालू) रत्नों की बनी हुई है, इसलिये समुद्र को 'रत्नाकर' कहा जाता है। सच्चा रत्नाकर यह भगवान चैतन्यसमुद्र है; इस महारत्नाकर में सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र–आनंद इत्यादि अनंत गुण के रत्न भरे हुए हैं।

सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र को तीन रत्न कहा जाता है, इसप्रकार के अनंत रत्नों के रस से यह चैतन्य समुद्र भरा हुआ है। अनंतगुणों की निर्मलपर्यायों के साथ वह चैतन्यरस अभिन्न है; अर्थात् अभेदरूप एक होने पर भी निर्मलपर्यायरूप से वह पृथक् दिखलाई देता है; इसप्रकार एक होने पर भी अनेकरूप होता हुआ अद्भुत निधिवाला भगवान आत्मा अपनी ज्ञानपर्यायोंरूपी तरंगों के द्वारा डोल रहा है—उछल रहा है—परिणमन कर रहा है। निर्मलपर्यायें अनेक होने पर भी वह सभी एक ज्ञानमय निजपद का ही अनुभव करती हैं, उसी में अभेद होती हैं; खंड–खंड पर्यायरूप वह अपना अनुभव नहीं करती किंतु अभेद स्वभाव में एकता करके वह एक स्वभावरूप ही स्वयं को अनुभव करती है।

हे जीवो! तुम भी ऐसे एक ज्ञानस्वभाव का ही अनुभव करो।

❋ ❋ ❋

राग–द्वेष करने से जीव मलिन होता है,
वीतरागभाव से जीव पवित्र होता है।
मोह करने से जीव मलिन होता है,
ज्ञान करने से जीव पवित्र होता है।
क्रोध करने से जीव मलिन होता है,
स्वाश्रित ज्ञाताभाव से जीव पवित्र होता है।
मिथ्या भावों से जीव मलिन होता है,
सम्यक्त्वादि शुद्धभावों से जीव पवित्र होता है।

धर्मी होने का मार्ग

धर्मी जीव कैसा होता है ? तथा कैसे ज्ञानभाव के द्वारा उसको निर्जरा होती है ? उसका यह वर्णन है। जिसने अपने आत्मा को एक ज्ञानमयस्वरूप अनुभव किया है, तथा इसके अतिरिक्त सभी भावों में आत्मबुद्धि छूट गई है, ऐसे जीव को रागरहित जो ज्ञानमय भाव है, वह धर्म है, उससे निर्जरा होती है।

प्रश्नः—यह तो जो धर्मी तथा ज्ञानी हुए हैं, उनकी बात हुई, किंतु हमें ज्ञानी होने के लिये क्या करना ?

उत्तरः—भाई, ज्ञानी ने जो किया, वह तू कर। ज्ञानी ने अपने स्वभाव को पहिचानकर रागादि परभावों का प्रेम छोड़ा, उसीप्रकार तू भी रागरहित तेरे ज्ञानानंदस्वभाव को पहिचान, तथा परभाव का प्रेम छोड़—यही धर्मी होने का उपाय है। विभाव से रहित अनंत गुणों से भरा हुआ जो ज्ञायकभाव, उसको गुरुगम द्वारा लक्ष्य में लेकर अनुभव करना चाहिये, यही ज्ञानी और धर्मी होने का रास्ता है, यही मोक्ष का मार्ग है।

जड़ लक्ष्मी या जड़ शरीर की क्रियाएं, यह तो आत्मा में हैं ही नहीं; तथा अब जो राग-द्वेषादि दुःखभाव हैं, वह भी आनंद के समुद्र में नहीं। आनंद का समुद्र चैतन्यमूर्ति आत्मा है... उसके सम्मुख हुआ कि वहाँ रागादि भाव रहते नहीं। इसप्रकार संयोग से भिन्न शुभरागादि भावों से भी भिन्न, अकेला ज्ञानरस से भरा हुआ अपना आत्मा, उसको अंतर में देखना-अनुभव करना, यही अपूर्व मंगल है। धर्मी ने ऐसा किया—उसकी पूर्णतया पहिचान करके अपने में भी ऐसे भेदज्ञान का भाव प्रगट करना—यही धर्मी होने का रास्ता है।

अहो, ऐसा जो ज्ञानस्वभाव, उसको चूककर बाहर की किसी भी इच्छा—अशुभ अथवा शुभ—उसके वेदन में तो दुःख ही है। पदार्थ को भोगने की 'इच्छा करनेवाला भाव' स्वयं उसको भोगता नहीं, तथा मैं भोगता हूँ, ऐसा जो भाव है, उस समय इच्छा करनेवाला भाव नहीं रहा। इच्छा करनेवाला भाव तथा भोगनेवाला भाव दोनों कभी एकसाथ रहते नहीं; इसलिये इच्छाएँ निरर्थक हैं, दुःखरूप हैं, आकुलता उत्पन्न करनेवाली है। इच्छारहित जो

ज्ञानस्वभाव है, उसमें पर्याय को एकाग्र करते ही शांति एवं निराकुल आनंद का अनुभव होता है। ऐसे अनुभवरस का स्वाद चखनेवाले धर्मी जीव को किसी अन्य पदार्थ की इच्छा नहीं रहती, इसलिये संपूर्ण संसार से वह विरक्त है, तथा अपने एक ज्ञायकभाव में ही एकता करके उसी को सत्यरूप, भूतार्थरूप, स्व-स्वरूप, सुखरूप अनुभव करता है, उसी में उसका उत्साह है; परभावों की ओर का उत्साह छूट गया है, उनमें से एकता छूट गई है, उसको वह स्व-रूप से अनुभव नहीं करता। ऐसी अंतर की ज्ञानपरिणति, वह धर्म है; तथा भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा ऐसी दशा प्रगट करना, यह धर्मी होने का रास्ता है।

❀❀❀

स्वयंभूरमण नाम के समुद्र में असंख्यात मच्छ ऐसे आत्मज्ञानसहित आज भी हैं। बाहर का शरीर तो मछली का है किंतु अंदर आत्मा तो देह से भिन्न चैतन्यमूर्ति है; वह अपने स्वभाव में दृष्टि लगाकर निर्विकल्प अनुभव सहित ऐसा आत्मज्ञान प्रगट करते हैं तथा अपूर्व आनंद का भोग (वेदन) करते हैं। देह का या राग का वेदन (भोक्तापना) ज्ञान में नहीं। जो जीव ऐसा ज्ञान प्रगट करे, वह ज्ञानी है, ज्ञानी अपने ज्ञानभावरूप ही परिणमन करता है।

ज्ञानी को राग-द्वेष-क्रोधादि तो होते हैं न ?

होते तो हैं, किंतु उनको ज्ञान से भिन्नरूप अनुभव करते हैं, उनमें एकत्वबुद्धि नहीं करते। राग के समय राग से भिन्न वह अपने को देखते हैं, जिसप्रकार श्रीफल में अंदर गोला भिन्न है—उसीप्रकार धर्मी अपने आत्मा को राग से भिन्न चैतन्यगोला देखता है। अज्ञानी को राग के समय राग से भिन्न अपना कोई अस्तित्व दिखलाई ही नहीं देता, राग ही दिखलाई देता है, ज्ञान दिखलाई नहीं देता; ज्ञानी-अज्ञानी के बीच यह महान अंतर है। शरीरादि तथा रागादि समस्त परभावों से अपनी चैतन्यवस्तु को भिन्न जानकर उस चैतन्यवस्तुरूप अपना अनुभव करना—यही धर्मी होने के लिये ज्ञानकला है। ऐसी ज्ञानकला प्रगट करना, वह आनंदमय मंगल प्रभात है, उसने अपने आत्मा में ज्ञानदीपक प्रगट करके दिवाली मनाई, तथा उस ही को अपूर्व नया वर्ष आत्मा में प्रारंभ हुआ।

—यह धर्म का-सुख का मार्ग है।

जगमगाते ज्ञान-दीपकों से सुशोभित आत्मा का सुप्रभात

(कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा : नूतन वर्ष का मंगल प्रवचन)

प्रात:काल आत्मा की प्रभुता की परम महिमा का जो मंथन (चिंतन-मनन) हुआ, उसका बारंबार स्मरण करते हुए प्रवचन में भी स्वामीजी ने कहा कि—आत्मा के भूतार्थ स्वभाव के सन्मुख होते ही द्रव्य के साथ पर्याय की एकता हुई तथा आनंद का अनुभव हुआ, वहाँ पर्यायबुद्धि छूट गई। उसका नाम सम्यग्दर्शन-सुप्रभात है। पर्याय एक समय की है, वह राग से भिन्न होकर ध्रुवस्वभाव का शरण लेती है अर्थात् उसमें अभेद हो जाती है। संयोग का शरण नहीं लिया, रागादि भाव विभावभाव हैं, चैतन्य से विरुद्ध हैं, वह भी शरणरूप नहीं, क्षणिक पर्याय एक समय की, उसको लक्ष्य बनाकर शरण लेने जावे तो विकल्प की वृत्ति उठती है, यह भी शरण नहीं होती। अंतर के स्वभाव में प्रभुता ऐसी है कि जिसमें केवलज्ञान-आनंद आदि सर्व गुणों का अखंड प्रताप है, जो कि किसी से तोड़ा नहीं जा सकता; इसप्रकार सर्व गुणों को धारण करनेवाली आत्मप्रभुता है, उसके सन्मुख होते ही जगमगाते हुए ज्ञानदीपक प्रगट हो जाते हैं। इन जगमगाते ज्ञानदीपकों से आत्मा का सुप्रभात सुशोभित होता है।

धर्मी को शरण है धर्मी का, 'धर्मी' वह जो अनंत गुणसंपन्न आत्मा, उसका धर्मी को अवलंबन है, उसका वह अनुभव करता है। वह आत्मा अपने स्वभाव से परिपूर्ण है। प्रभुता से पूर्ण है, ज्ञान का पुंज है। ऐसे आत्मा के चैतन्यसमुद्र के अंदर जो पहुँचा, वह धर्मी जीव अधर्मरूप रागादि परभावों को क्यों चाहेगा? उन्हें क्यों आत्मा के मानेगा? ज्ञान-आनंद स्वभाव को जो अपना मानकर अनुभव करता है, वह रागादि को अपना मानकर किसप्रकार अनुभव करेगा? अपनी प्रभुता को जिसने देखा, वह अपने को पामररूप किसप्रकार मानेगा? वाह! आत्मा की प्रभुता! उसकी महिमा, उसकी दृष्टि, उसका अनुभव, वह महा मंगल है, आनंदरूप है। जीव को आत्मा का ऐसा परम महिमावंत स्वरूप श्रवण करने का अवसर भी महाभाग्य से कभी मिलता है।

ज्ञानी ने अपने चिदानंदस्वभाव को अनुभव में लेकर रागादि परभावों को भिन्न किया है कि—'यह मेरी वस्तु के निजभावनहीं हैं।' अहो, ऐसा चैतन्य के आनंद का मार्ग! वह राग से किसप्रकार प्राप्त हो? चैतन्य महाप्रभु दृष्टि में आया, वहाँ धर्मी को कृतकृत्यता हो गई, अब वह रागादिक को या संयोगों को जगत के तमाशे के समान भिन्न होकर देखता है, उनको वह अपने में सम्मिलित नहीं करता तथा उनका वेदन भी नहीं करता। ज्ञानी की डिग्री तो चैतन्यविद्यारूप है। चैतन्य को चेतनेरूप-अनुभव करनेरूप जो ज्ञान-विद्या, उसमें ही ज्ञानी की विद्वत्ता है। जिसप्रकार मीठे दूध की मलाई में विष की एक बूँद भी प्रवेश नहीं कर सकती; इसीप्रकार आनंदरस से परिपूर्ण चैतन्य के मीठे दूधपाक में रागरूपी विष की एक बूँद भी प्रवेश नहीं कर सकती। परभावों से सर्वथा भिन्न ज्ञानस्वरूप को जानता हुआ धर्मी जीव परभावों के प्रति सर्वथा विरक्त है। जिसमें ज्ञान भरा हुआ है, उसको तो जानता नहीं तथा जिसमें अपना ज्ञान नहीं, उसको जानने जावे तो वह ज्ञान कैसा? ऐसे ज्ञान को वास्तव में ज्ञान कहते नहीं। सच्ची ज्ञानकिरण तो उसका कहा जाता है कि जिसमें ज्ञान की सत्ता परिपूर्ण भरी है, ऐसे अपने आत्मस्वभाव को जो प्रकाशित करे अर्थात् जाने। उसको जानते हुए जाननेवाले को शांति तथा आनंद होता है। परभावों में से आत्मा की शांति निकलती नहीं, इसलिये ज्ञानी उनके प्रति सर्वथा विरक्त है। केवल एक पूर्णानंदस्वभाव ही उसकी दृष्टि में निवास कर रहा है।—ऐसे आत्मा को दृष्टि में-ज्ञान में-अनुभव में लेने से केवलज्ञानरूपी आनंदमय मंगल सुप्रभात उदित होता है।

ज्ञान-दीपकों से जगमगाती आत्मप्रभुता जयवंत हो!

किसी वस्तु को देखना हो तो उस पर प्रकाश फेंकने से वह दिखाई देती है; उसीप्रकार आत्मा को देखना हो तो उस पर ज्ञानप्रकाश फेंकने से वह अवश्य दिखाई देगा।

अरिहंत परमात्मा की सच्ची स्तुति

[अंक ३०५ से आगे]

(६१) समंतभद्रस्वामी कहते हैं कि हे नाथ! सम्यग्दृष्टि ही आपकी सच्ची स्तुति करनेवाला है। राग में एकत्वबुद्धिवाला जीव वीतराग भगवान की स्तुति किसप्रकार कर सकता है? मैं ज्ञान हूँ—ऐसा जिसको भान नहीं, जिसको ज्ञान का अनुभव नहीं, वह ज्ञानस्वभाव की पूर्णता को प्राप्त हुए भगवान की स्तुति कहाँ से करेगा? मैं ज्ञानस्वभाव हूँ—ऐसे अंतर के अनुभव द्वारा जितना चिंतवन करे, उतना प्राप्त हो ऐसा है; संपूर्ण परमात्मपद अंतर में भरा है।

(६२) अहो, ऐसे परमात्मपद का स्मरण, चिंतन करने जैसा है। ऐसे चैतन्य पद के चिंतन से संपूर्ण संसार का विस्मरण हो जाता है। आत्मा के परम चैतन्य पद को लक्ष्य में लेकर जहाँ स्वानुभवरूप सिंहनाद किया, वहाँ कर्मरूपी बकरे खड़े नहीं रहते। धर्मी अपने आत्मा को कर्म से अत्यंत भिन्न अनुभव करता है। कषाय से भी भिन्न शांत अकषायरूप अपना अनुभव करता है।—ऐसा जिसने अनुभव किया, वह जितेन्द्रिय जिन हुआ, सम्यक्त्वी हुआ।

(६३) आत्मा के ऐसे अकषाय ज्ञानानंदस्वरूप को वीतराग की वाणी बतलाती है। ऐसी वीतरागी वीरवाणी आत्मा के वीतरागभाव का ही पोषण करनेवाली है। राग का पोषण करे, वह वीर की वाणी नहीं, वह तो कायर की वाणी है।

'वचनामृत वीतराग के परम शांतरस मूल'

(६४) लेंडीपीपल में चरपराहट के समान आत्मा में आनंदस्वभाव भरा है; आत्मा इस शरीर से भिन्न है, उसमें अनंत शक्ति है। स्वयं की ऐसी चैतन्य संपदा को भूलकर जो जीव बाहर में परपदार्थ की भीख मांगता है, अर्थात् परपदार्थ हो तो मुझे सुख प्राप्त होगा, ऐसा मानता है, वह जीव पराधीन भिक्षुक है। थोड़ा मांगे वह छोटा भिक्षुक, अधिक मांगे वह बड़ा भिक्षुक; अपनी पूर्ण चैतन्य संपदा को पहिचानकर कुछ भी नहीं मांगे, वह बड़ा बादशाह है।

(६५) आनंद के सागर में जिसने एकता की है, राग के साथ की एकता को जिसने छोड़ दिया है, वह विरक्त गुरु है; वही संसार से मुक्त होने का तथा मोक्ष प्राप्त करने का सच्चा मार्ग बतला सकते हैं। (विरक्त गुरु में दिगम्बर मुनिराज मुख्य हैं।)

(६६) जिसको जगत की अन्य अनेक विद्याओं का ज्ञान है किंतु भवसागर से तिरने के लिये भेदज्ञान-विद्या का ज्ञान नहीं है, उसकी सभी विद्याएँ समुद्र में डुबानेवाली हैं। बाह्य अन्य विद्या का ज्ञान कदाचित् कम भी हो परंतु अंतर में राग से भिन्न चैतन्य-विद्या को जो जानता है, वह जीव अल्प काल में तीन लोक में प्रकाशक ऐसी केवलज्ञान-विद्या प्रगट करके भवसमुद्र से तिर जायेगा।

(६७) अरे आत्मा! तेरे चैतन्यस्वरूप को जानने की एक बार तो लगन लगा। अपनी चैतन्य खान को भूलकर बाहर में जड़-पत्थर की खान खोदने में रुक गया, राग में धर्म मानकर राग की खान खोदने में रुक गया; एक बार जड़ से भिन्न, राग से भिन्न, ऐसी तेरी चैतन्य खान में गहरा उतरे तो चैतन्य के अपूर्व निधान तुझे अपने में ही दिखाई देकर परम आनंद प्राप्त होगा।

(६८) धर्मात्मा जानता है कि मैं अपने चैतन्यरस से सदा भरा हुआ हूँ। मैं एक हूँ, मेरे स्वरूप में मोह नहीं है; शुद्धचेतना का समुद्र हूँ। ऐसे चैतन्य-समुद्र में डुबकी लगाने से आनंद का वेदन होकर मोह दूर होता है, यह अपूर्व मंगल है।

(६९) आनंदस्वरूप भगवान आत्मा का स्पर्श करने से जिस अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव हो, वह मंगल है।

(७०) आत्मा परिपूर्ण ज्ञान-आनंदस्वभावी है, सभी जीव ज्ञानमय सिद्ध समान हैं; कोई जीव अपूर्ण नहीं है कि जो दूसरा प्रदान करे। ऐसे आत्मा का भान करने से जिसे सम्यग् बीज का उदय हुआ, वह वृद्धि होकर केवलज्ञान तथा परमात्मदशारूपी पूर्णिमा होगी।

(७१) आत्मा पामर रहनेवाला नहीं किंतु प्रभुता से भरा हुआ है; उसका भान करके इस आत्मा को परमेश्वर कैसे बनाना, इसकी यह बात है।

(७२) समयसार अर्थात् सर्वज्ञदेव से प्राप्त हुआ ज्ञान का समुद्र। उसमें आत्मा के स्वभाव की अगाध महिमा भरी है। उसमें गहरा उतरे तो आत्मा के परम आनंद का अनुभव प्राप्त हो।

(७३) दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह आत्मा में नहीं—इसका अर्थ यह है कि ऐसे तीन भेद एक आत्मा के अनुभव में नहीं, अनुभव में अभेद आत्मा है। ऐसा अभेद आत्मा, वह मैं हूँ—ऐसा धर्मी अनुभव करता है।

(७४) वैशाख सुदी तृतीया के ब्राह्म मुहूर्त में जागृत होते ही गुरुदेव के मुख में यह शब्द निकले कि—'खोलो प्रभुजी! खोलो, आत्मा का खजाना खोलो।' इसके बाद यह पद गाया कि—

उपजे मोह-विकल्प से समस्त यह संसार,
अंतर्मुख अवलोकते विलय होत नहीं वार।

(७५) यह तो चैतन्य-हीरे की अलौकिक बात है! इसका श्रवण तथा बहुमान करते समय बीच में विकल्प से तो पुण्य का बंध होता है, वह भी अन्य पुण्य की जाति से उच्च जाति का होता है। किंतु धर्म में ऐसे राग या पुण्य का किंचित् भी मूल्य नहीं; आत्मा का ज्ञान तो उस राग तथा पुण्य से भिन्न ही है।

(७६) अविनाशी आत्मा को विकार के फलरूप जो देहादि का संयोग है, वह क्षणभंगुर-नाशवान है। जन्म होने से पहले ही उसको क्षणभंगुरता प्रारंभ हो गई। अंदर विज्ञानघन तत्त्व देह से भिन्न है। उस विज्ञानघन तत्त्व को अनुभव में लेने से धर्म होता है; अन्य किसी भी उपाय से धर्म होनेवाला नहीं।

(७७) समयसार में आत्मा के जो भाव भरे हैं, वह भाव अनादि के हैं। अनादि से जो वस्तुस्वभाव है, वह समयसार में कहा है। समयसार के शब्द भले नाशवान हों, किंतु उसके वाच्यरूप से शुद्धात्मा समयसार है, उसका कभी नाश होनेवाला नहीं है। वह कषाय-अग्नि में जलता भी नहीं; कषाय से भिन्न शांतरस से भरा हुआ ज्ञानानंदस्वरूप है।

(७८) चार गतिरूप जो दुःख का समुद्र है, उससे पार होने के लिये स्वभाव का अवलंबन लेना, उसमें ही शांति तथा सुख है।

(७९) जन्म को मैं जानता हूँ, जन्म मेरा नहीं; मरण को मैं जानता हूँ, मरण मेरा नहीं;
देह को मैं जानता हूँ, देह मेरा नहीं; राग को मैं जानता हूँ, राग मेरा नहीं;
पर्याय को मैं जानता हूँ, पर्याय जितना मैं नहीं; एक अखंड ज्ञानानंद तत्त्व मैं हूँ।
— ऐसा यथार्थ ज्ञान करना, यह भव से छूटकर मोक्ष प्राप्त करने का उपाय है।

(८०) अपने चैतन्य की अपूर्व बात कभी समझी नहीं, इसलिये जीव को नवीन लगती है। भाई, तेरा स्वरूप ही प्रभु है, वह तुझे बतलाते हैं। उसको स्वीकार करके, रुचि करके अनंत जीव अनुभव करके मोक्ष में गये हैं; इसलिये तू भी आत्मा के स्वभाव की यह बात अपूर्व भाव से श्रवण करके, लक्ष्य में लेकर अनुभव में ले तो तुझे परम आनंद सहित मोक्षदशा प्रगट होगी—यह मंगल है।

(८१) सीमंधर जिनवर नमुं, आदिनाथ सुखकार;
वीतराग की सेव कर, उतरूँ भव से पार।
भावनगर में सुशोभित, उत्सव मंगलकार;
देख आनंदित हो 'हरि' बोलत जयजयकार॥

साधक से....

जिनेन्द्रदेव समान अपने स्वरूप को लक्ष्य में लेकर तू प्रतिक्षण उसका चिंतवन कर, जिससे तुझे आनंद की उत्पत्ति होगी और विकल्पों का कोलाहल शांत हो जायेगा। तेरा स्वरूप विकल्पों के कोलाहल से रहित नित्य विज्ञानघन है; विकल्पों के द्वारा उसका अनुभव कैसे हो? आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-आनंद-चारित्र सब अतीन्द्रिय हैं, मन के विकल्पों से पार हैं। ऐसे स्वभाव को साधने के लिये जो जीव जागृत हुआ, उस साधक के अंतर की झंकार कुछ और ही प्रकार की होती है।

सन् १९७१ की जनगणना के समय 'धर्म' के खाना नं० १० में गौत्र, जाति आदि ना लिखाकर केवल 'जैन' ही लिखाकर सही संख्या इकट्ठी करने में सरकार की मदद करें।

आत्मा की बात सूक्ष्म है—किंतु समझ में आ सकती है

[पिछले वर्ष राजकोट शहर में पूज्य गुरुदेव १५ दिन रहे थे, उस समय के प्रवचनों में से कुछ प्रवचन पहले आत्मधर्म में दिये जा चुके हैं; कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है।]

आत्मा के स्वभाव की यह बात सूक्ष्म है; सूक्ष्म होते हुए भी समझ में नहीं आये, ऐसी नहीं है। समझना चाहे तो समझ में आ सकती है, इसको समझना परम हितावह है। आत्मा को समझे बिना अन्य किसी प्रकार हित होनेवाला नहीं है। अहा, केवलज्ञानी होकर लोकालोक को जानने की जिसमें शक्ति है, वह कहे कि अपने स्वरूप की बात मुझे समझ में नहीं आ सकती! यह कहीं इसको शोभा देता है? स्वयं अपने स्वरूप की बात क्यों नहीं समझ सकता? अंतर में दृष्टि करने से अपना स्वरूप स्वयं को साक्षात् समझ में आ सकता है तथा साक्षात् अनुभव किया जा सकता है—ऐसी वस्तु है। समझे बिना यों ही मान लेने की बात नहीं है, किंतु स्वयं समझकर अनुभव किया जा सकता है, स्वयं के स्वानुभव से प्रमाण करने को आचार्यदेव ने कहा है।

इस जगत में अनंत आत्माओं का भिन्न-भिन्न अस्तित्व है; प्रत्येक आत्मा चैतन्यमूर्ति आनंदधाम है; विकाररूप होना उसका स्वभाव नहीं है; पवित्ररूप परिणमन करना उसका स्वभाव है। ऐसे स्वभाव को भूलकर अज्ञानी रागादिभावों का कर्ता-भोक्ता होकर परिणमन करता है। सम्यक्त्वी अपने निर्मल ज्ञानभावरूप परिणमन करता है; रागादिभावों का जो परिणमन है, वह भावआस्रव अचेतन है, उनका स्वामी होकर उनमें धर्मी परिणमन नहीं करता। निर्मल परिणति हुई, उसको शुद्ध उपयोग अथवा शुद्ध उपादान कहा जाता है, उसमें रागादि अशुद्धभावों का कर्तापना नहीं है। स्वयं के आत्मा को ज्ञानरूप जाना-अनुभव किया, वह जीव ज्ञान से विरुद्ध भावों को अपनेरूप किसप्रकार अनुभव करेगा? और जिन्हें अपने से भिन्न जाना, उनका कर्ता-भोक्ता वह कैसे हो सकता है? जिसप्रकार आँख अपने से भिन्न दृश्य

वस्तु की कर्ता-भोक्ता नहीं, केवल देखनेवाली ही है, उसीप्रकार धर्मी के ज्ञानचक्षु अपने से भिन्न सर्व भावों के कर्ता-भोक्ता नहीं हैं, केवल जानते ही हैं, अर्थात् शुद्धज्ञानभावरूप ही रहते हैं। ऐसा ज्ञानभावरूप परिणमन, यही मोक्ष का मार्ग है।

पाप अथवा पुण्य में तन्मय होकर परिणमन करना, यह तो मिथ्यात्व है, यह अज्ञानी का परिणमन है। धर्मी ने वस्तुस्वभाव को पहिचान लिया है अर्थात् ज्ञानस्वभावरूप स्वधर्म को पहिचाना, वहाँ शुद्धतारूप परिणमन हुआ, वह सुखरूप परिणमन है; वह आनंदरूप है, वह ज्ञानरूप है, ऐसा जो परिणमन हुआ, उसमें रागादिक कोई भी भाव नहीं है; उन रागादि भावों में चेतनपना नहीं है। ऐसे ज्ञानपरिणमन को भगवान ने मोक्षमार्ग कहा है, यही धर्म है।

आनंदरस का धाम आत्मा, उसके सन्मुख होकर उसका वेदन करना, यह शास्त्र का तात्पर्य है।

आत्मा में दो स्वभाव—एक ध्रुवभाव, दूसरा क्षणिकभाव; उसमें ध्रुवभाव जो त्रिकाल एकरूप है, उसको देखने से बंध-मोक्ष नहीं है; बंध को दूर करके मोक्षदशा प्रगट करना—ऐसा भेद ध्रुव में नहीं है; अर्थात् पारिणामिकभावरूप जो ध्रुव है, वह बंध-मोक्षरूप नहीं है, बंध-मोक्ष के कारणरूप भी नहीं है। बंध-मोक्ष तथा उसके कारण पर्याय में हैं, यह पर्याय औदयिक-क्षायिकादि चार भावरूप होती है।

द्रव्यरूप पारिणामिकभाव; पर्यायरूप चार भाव—ऐसे द्रव्य-पर्याय दोनों का जोड़ा यह आत्मवस्तु है। आत्मा स्वयं द्रव्य-पर्यायरूप वस्तु है। द्रव्य तथा पर्याय ऐसे दो भावरूप संपूर्ण आत्मा है; वह प्रमाणज्ञान का विषय है।

द्रव्यनय का विषय भी एक अंश है, और पर्यायनय का विषय यह भी एक अंश है। शुद्धनय स्वयं पर्याय है किंतु वह अखंड द्रव्य को विषय बनाती है, वहाँ नय तथा उसका विषय अभेद हो जाता है। ऐसे अभेद आत्मा की प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन है। 'यह शुद्धनय, तथा यह इसका विषय' ऐसे भेद अनुभूति में नहीं है।

अवस्था का काल एक समय का; किंतु आत्मा कभी भी अवस्था से रहित होता नहीं है, प्रतिसमय नवीन-नवीन अवस्थारूप परिणमन करता ही रहता है। सिद्धदशा में भी अवस्था है। अवस्था वह कहीं बाह्य उपाधि नहीं है, आत्मा का ही स्वरूप है, किंतु एक पर्याय जितना ही आत्मा नहीं है, द्रव्य-स्वरूप एकरूप ध्रुव रहनेवाला आत्मा है; उसके आश्रय से होनेवाली

निर्मल परिणति वह मोक्षमार्ग तथा मोक्ष है।

राग में एकताबुद्धिरूप ताले तोड़ दे तो चैतन्य का खजाना खुल जावे। तुझे आत्मा की प्रभुता संत बतलाते हैं। बहिरात्मदशा, अन्तरात्मदशा, परमात्मदशा—यह तीनों आत्मा की पर्यायें हैं, तीनों अवस्था के समय द्रव्यस्वभाव एकरूप है।

भाई, दुनिया की बात समझने के लिये उसमें तो रस लेकर गहराई से सोचता है, तो यह अपने आत्मा के वैभव की बात समझने के लिये उसमें रस लेकर तू गहराई से सोचेगा तो कोई अपूर्व वस्तु का तुझे अनुभव होगा। राग की तथा पुण्य-पाप की बातें, यह तो स्थूल हैं, अनंत बार अज्ञानभाव से की हैं। पुण्य-पाप से भिन्न ऐसे चैतन्यभाव की पहिचान करके मोक्षमार्ग प्रगट करना, यह अपूर्व है।

मोक्षमार्ग में तीन भाव लगाये हैं; किंतु ज्ञान की अपेक्षा से सम्यक् क्षयोपशमभाव ही है। ज्ञान का क्षायिकभाव होते ही केवलज्ञान होता है।

सिद्ध के आत्मा में भी सक्रियपना तथा अक्रियपना है। ध्रुव अपेक्षा से वह अक्रिय है; तथा पर्याय के उत्पाद-व्यय की अपेक्षा वह सक्रिय है। पर्याय का परिवर्तन होना, यह कहीं दुःख नहीं है किंतु बीच में मोह हो तो दुःख होता है। प्रवचनसार गाथा ६० में कहते हैं कि अरिहंतों को दुःख नहीं, क्योंकि मोह नहीं है।

द्रव्य है किंतु पर्याय नहीं, अथवा पर्याय ही है किंतु द्रव्य नहीं—ऐसा मानना, यह एकांत मिथ्यात्व है। जीव के द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को एकसाथ भगवान ने पहिचान लिया है; उन्होंने ही जीव का यथार्थ स्वरूप बतलाया है।

इसमें मोक्ष का कारण बतलाया। ध्रुवधाम के सन्मुख एकाग्र हुई परिणति, वह मोक्ष का कारण है; देह की क्रिया नहीं। यह दुःख से छूटकर सुख का अलौकिक मार्ग है। अपने द्रव्य में अपनी पर्याय को ले जाना ही सुख है; इसप्रकार सुख का मार्ग अपने में ही है, स्वयं ही सुखरूप है।

प्रथम स्वसन्मुख होते ही आनंद के अंश का वेदन होता है और उसके साथ सम्यक् प्रतीति होती है कि ऐसा संपूर्ण आनंद मैं हूँ। पर्याय आत्मा में नहीं, ऐसा कहनेवाले को आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता। अनुभव, वह पर्याय है। सिद्ध को भी पर्याय है।

चैतन्य को स्वघर में आना है, उसमें बोझ क्या? उल्टा परभाव का बोझ उतारकर हल्का हो जाये ऐसा है।●●

ज्ञानमय सुप्रभात

कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रातःकाल सुवर्णधाम (सोनगढ़) में मोक्ष का स्वर्ण-प्रभात खिला था... आज वीर प्रभु के आत्मा में सिद्धपद का सुप्रभात प्रकाशित हुआ था, गौतमस्वामी के आत्मा में केवलज्ञान का सुप्रभात झलक उठा था, तथा सुधर्मास्वामी के आत्मा में श्रुतकेवलीपने का सुप्रभात उदित हुआ था। ऐसे जगमगाते ज्ञानदीपक का सुप्रभात भक्तों ने आनंद से मनाया। पावापुरी का स्मरण करते हुए वीर प्रभु की—अब सिद्ध प्रभु की परम भक्तिपूर्वक पूजन हुई।

वीर प्रभु के द्वारा उपदिष्ट जो वीतरागी आत्मस्वरूप, उसको स्वामीजी ने मंगल-प्रवचन में बतलाया। आत्मा का परम सत् ज्ञानस्वभाव है; उसका अनुभव करनेवाला ज्ञानी अपने टंकोत्कीर्ण ज्ञानस्वरूप को नित्य जानता है। विकल्प, पुण्य-पाप, राग या हर्ष करने-भोगने के भाव—वह सभी क्षणिक हैं, धर्मी उस-स्वरूप अपने को अनुभव नहीं करता। ऐसे आत्मा का अनुभव, वह धर्म की कला है; वह ज्ञानमय सुप्रभात है।

ऐसे शाश्वत आत्मा के निर्विकल्प रस से भरे हुए यह आनंदमय पकवान हैं, दिवाली के यह पकवान परोसे गये हैं। रागादि भावों में तो दुःख है, चैतन्य-रस से भरा हुआ नित्य आत्मा, उसके सन्मुख होकर ज्ञानी अपने ज्ञानानंद-रस का वेदन करते हैं। ऐसे टंकोत्कीर्ण ज्ञानस्वभाव का अनुभव कर-करके महावीर भगवान आज सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं, ध्रुव पद को प्राप्त हुए हैं; सादि-अनंत वह अपने आत्मा के आनंद में स्थिर रहेंगे। अज्ञानी अध्रुव-क्षणिक रागादिभावरूप ही अपने को अनुभव करता होने के कारण चार गतिरूप अध्रुव पद में भ्रमण करता है। एक तरफ ध्रुव स्वभाव, दूसरी तरफ क्षणिक रागादिभाव दोनों की भिन्नता है। ध्रुव स्वभाव का अनुभव करते हुए पर्याय भी ध्रुव के साथ अभेद हो गई; ध्रुव के साथ अभेद होकर प्रगट होनेवाली वह पर्याय सादि-अनंत ज्यों की त्यों ऐसी ही हुआ करेगी। इस अपेक्षा से उसको ध्रुव कह दिया। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने गाथा में सिद्धगति को ध्रुवगति कहा है; ऐसी ध्रुव सिद्धगति को महावीर भगवान आज पावापुरी से प्राप्त हुए थे; उसका यह उत्सव है।

धर्मी को 'ध्रुव' कहा, क्योंकि वह ध्रुवस्वभाव को दृष्टि में लेकर एक टंकोत्कीर्ण स्वभावरूप अपने को अनुभव करता है। अज्ञानी ध्रुव पद को भूलकर इच्छा-राग-द्वेषादि अध्रुव भावरूप ही अपना अनुभव करता है।

चैतन्य का मंगल-सुप्रभात

नूतन वर्ष के सुप्रभात में सीमंधरनाथ के दर्शन करने के बाद मंगल-संदेश में गुरुदेव ने चैतन्य की प्रभुता की उत्कृष्टता का महिमापूर्वक वर्णन करके कहा कि आत्मा की एक प्रभुता में सब समा जाता है, उसको याद करके प्रगट करना, यही मंगल-सुप्रभात है। इतना ही सत्य है, इतना ही कल्याण है, अनुभवनीय है कि जितना यह ज्ञानस्वरूप है। 'उसका प्रातःकाल खूब चिंतन-मनन चला था।' ऐसा कहकर गुरुदेव ने सत्य आत्मस्वरूप का अनुभव करने की उत्तम प्रेरणा प्रदान की। तथा कहा कि ऐसा आत्मा ही ध्रुव-शरण है। अहो, यही सत्य है और इसके अतिरिक्त सब असत्य है, अभूतार्थ है, अवस्तु है। भूतार्थस्वभाव में इनका अभाव है; ऐसा जो भूतार्थस्वभाव है, वह आत्मा की सच्ची प्रभुता है। इसमें सर्वज्ञता, पूर्ण आनंद-सुख सभी भाव समा जाते हैं। बाहर देखनेवाली आँख को बंद करके अंतर में ऐसे भूतार्थ आत्मा को देखना ही अपूर्व मंगल-प्रभात है।

विविध समाचार

तलोद में जैनधर्म शिक्षण समिति गुजरात द्वारा विशाल आयोजन

चतुर्थ वर्षीय आयोजन तारीख २९-९-७० से तारीख ८-१०-७० तक था। उद्घाटन श्री पूरणचंदजी गोदिका (जयपुर) द्वारा हुआ। अध्यक्ष श्री डाह्याभाई महेता सिविल जज (अहमदाबाद), अतिथि विशेष 'श्री चुनीकाका' साबरकांठा जिला के भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष थे। तारीख २७ को मेहमानों तथा विद्वानों का स्वागत जुलूस के रूप में हुआ, विद्वानों में श्री पंडित खेमचंदभाई (सोनगढ़), श्री पंडित फूलचंदजी एवं पंडित कैलाशचंदजी सिद्धांतशास्त्री (वाराणसी), श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री एम.ए. जयपुर, श्री पंडित चिमनलालजी सोनगढ़, श्री पंडित नेमचंदजी रखियाल पधारे थे। दैनिक कार्यक्रमों में प्रवचन तथा शिक्षण-कक्षाओं का कार्यक्रम कुल ७ घंटा तक चलता था। श्री पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री, श्री कैलाशचंदजी सिद्धांत शास्त्री तथा श्री पंडित खेमचंदभाई के द्वारा प्रवचन होते थे; श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री, श्री चिमनभाई तथा श्री नेमचंदभाई कक्षाओं में पढ़ाते थे।

प्रवचन में ८५० तक संख्या हो जाती थी, अंतिम दिन विद्वानों को सम्मानपत्र दिया गया, करीब २५ भाईयों ने आभार व्यक्त किया था। ब्रह्मचारी श्री केशवलालजी जो गुजरात में त्यागी वर्ग में मुख्य माननीय हैं, आपने अपूर्व धर्म-प्रभावनामय इस धर्म-जागृति का वर्णन करके पूज्य श्री कानजीस्वामी का परम उपकार माना, करीब ५५ गाँव के भाई-बहिन इस शिक्षण-शिविर में भाग लेने आये थे। सभी ने बहुत प्रसन्नता प्रगट की।

पंडित श्री कैलाशचंद्रजी सिद्धांतशास्त्री (वाराणसी) ने सभा में कहा कि वास्तव में अध्यात्म तत्त्वज्ञान की बाढ़ आयी है, उसे कोई रोक नहीं सकता। यह परम सत्य मार्ग है, इसी के द्वारा समाज का उद्धार हो सकता है। निश्चयदृष्टि के बिना व्यवहार का ज्ञान भी नहीं होगा और विपरीतता एवं शिथिलता का नाश भी नहीं होगा। मेरी सम्मति है, सहानुभूति है, सहयोग है, मेरा यह सर्वप्रथम ही शिक्षण-शिविर में आने का प्रसंग है।

श्री पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री ने कहा कि—वीतराग सर्वज्ञ कथित सत्यमार्ग की

प्रभावना में भारत के सभी विद्वानों को आगे आकर उत्साह से सहयोग देना चाहिये, मैं इसीलिये आया हूँ। इस अवसर पर कुछ जनों ने तो अपनी पूर्वाग्रह की गलती के लिये और वीतरागमार्ग की विराधना के लिये पश्चाताप किया था। सत्य वस्तुस्वरूप समझकर आत्महित के लिये शीघ्र जागृत होने का अनुरोध भी किया।

व्यवस्था-खर्च के लिये लोगों ने यथाशक्ति दान बिना मांगे प्रसन्नतापूर्वक दिया था। बाढ़ पीड़ितों की सहायतार्थ उद्घाटन के समय जो रकम आयी थी, वह तलोद पंचायत को दी गई है। नियमित स्वाध्याय करने की लिखित प्रतिज्ञा बहुत लोगों ने ली है। इसप्रकार तलोद में अध्यात्म-ज्ञानगंगा का प्रवाह अत्यंत शांति उत्साह से चल रहा था, जिसमें बड़ी संख्या में जैन-जैनेतरों ने भाग लिया, बाहर गाँव से बड़े-बड़े अग्रणी भी लाभ लेने हेतु आते थे। निर्मल तत्त्वज्ञान का फल शांति देखकर सभी ने वीतराग विज्ञानरूप आध्यात्मिक ज्ञान की सराहना की।

तारीख ९-१०-७० हिम्मतनगर में श्री खेमचंदभाई तथा वाराणसी के उभय विद्वानों के स्वागत के पश्चात् महावीरनगर-जिनमंदिर में दर्शन और कहाननगर कोओ. हा. सोसायटी के शिलान्यास की विधि श्री खेमचंदभाई के शुभहस्त से हुई। आपके द्वारा प्रवचन दिया गया, को. सोसायटी के द्वारा सोनगढ़ में परमागम मंदिर के लिये रु. ५०१ एक गाथा-टीका सहित लगाने हेतु ज्ञानदान में दिया गया। सहयोग के लिये सभी को धन्यवाद। *—बाबूभाई चुनीलाल जैन*

जयपुर (राज०)—इस बार पंडित हुकमचंदजी पर्व के दिनों में जयपुर ही रहे। प्रात:काल बड़ा मंदिरजी में तथा सायंकाल बड़ा दीवानजी के मंदिर में आपका प्रवचन सुनने के लिये श्रोतागण हजारों की संख्या में एकत्रित होते थे। बापूनगर में प्रतिदिन पूज्य स्वामीजी के प्रवचन टेपरिकार्ड द्वारा सुनवाये जाते थे। पंडितजी के प्रयत्न से जयपुर के समस्त जैन विद्यालयों में श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड का पाठ्यक्रम चालू हो गया है। तथा कई वीतराग विज्ञान पाठशालाओं की भी स्थापना हुई है। श्री पूरनचंदजी गोदीका का इसमें सक्रिय सहयोग है। पंडितजी ने समस्त जैन समाज से आगामी जनगणना में अपने को 'जैन' लिखाने का अनुरोध किया। क्षमावाणी पर्व बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। *—मंत्री*

ललितपुर (उ.प्र.)—विदिशा निवासी वाणीभूषण पंडित ज्ञानचंदजी के पधारने से विशेष उत्साह रहा। पंडितजी के आध्यात्मिक प्रवचनों से लोगों में धार्मिक रुचि जागृत हुई।

पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों के टेपरिकार्ड भी लोग बड़ी रुचि से सुनते थे। पंडितजी प्रवचनों का स्पष्टीकरण करते थे। समझाने की शैली सरल एवं हृदयग्राही है। ललितपुर की जैन समाज में सोनगढ़ का आकर्षण पैदा हुआ है। अगले वर्ष शिक्षण-शिविर में यहाँ से काफी लोगों के सोनगढ़ जाने की संभावना है। *— हजारीलाल टड़ैया*

खंडवा (म.प्र.)—विभिन्न समारोहों के साथ पर्व सानंद समाप्त हुआ। चारों अनुयोग के ज्ञाता विद्वान पंडित राजकिशोरजी जैन, बी.एससी., बड़ौतवालों के आने से बड़ा ही आनंद आया। आपने मोक्षशास्त्र, मोक्षमार्गप्रकाशक, तथा श्री समयसारजी पर विद्वत्तापूर्ण प्रवचन किये। शैली आकर्षक एवं सराहनीय थी, समाज खूब प्रभावित हुआ। *—जुगमंधरदास जैन*

छिंदवाड़ा (म.प्र.)—यहाँ पर्व के अवसर पर पंडित गोविन्ददासजी पधारे थे। प्रतिदिन प्रातःकाल ५ बजे से रात्रि को ९ बजे तक विभिन्न कार्यक्रम चलते थे। पंडितजी ने श्री समयसारजी, मोक्षमार्गप्रकाशक, आत्मानुशासन आदि ग्रंथों पर प्रवचन किये। लोग खूब प्रभावित हुए। प्रतिदिन शंका-समाधान का कार्यक्रम भी चलता था। आत्मधर्म के दस ग्राहक बने। *—दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, छिंदवाड़ा*

प्रतापगढ़ (राज.)—हमारे यहाँ मुमुक्षु मंडल स्थापित हुआ है, हमारी प्रार्थना पर पर्यूषण पर्व पर सोनगढ़ से श्री सुजानमलजी मोदीजी (बड़ी सादड़ी) को भेजा गया। उनका प्रवचन हमारी ही भाषा में हुआ, जिसको सबने अच्छी तरह सुना व समझा। आपका प्रवचन हमेशा तीन घंटा तथा शिक्षण शिविर, दोपहर तथा रात्रि को तत्त्वचर्चा और मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन होते थे। आपके प्रवचन से जैन व अजैन सब लाभान्वित हुए। धर्म की जागृति हुई, उपस्थिति अच्छी रही। आपकी सरलता व विद्वत्ता से प्रभावित होकर समाज ने आपको मान-पत्र भी भेंट किया। कविराज श्री जेठमलजी नारायणगढ़वाले भी ३ रोज के लिये प्रतापगढ़ पधारे थे। *—चांदमल सालगिया, एडवोकेट*

उपाध्यक्ष, दिगम्बर मुमुक्षु मंडल प्रतापगढ़ (राज.)

भोपाल (म.प्र.) मुमुक्षु मंडल का मुख्य कार्यालय

सर्वज्ञ वीतराग कथित जैन तत्त्वज्ञान के विशेष प्रचारार्थ विदिशा में प्रशिक्षण शिविर पर म.प्र. मुमुक्षु मंडल का अधिवेशन तथा पदाधिकारियों का चुनाव हुआ था, उसमें निम्न प्रस्ताव

पारित किए गये थे। १-ध्रुवकोष ११००० का बनाया जाये। ४००० रुपये की स्वीकति हो चुकी है। शेष राशि आपके मंडलों से एकत्र करके भेजें। २-इस काय में काफी प्रगति लाने के लिये एक कार्यलय पृथक् खोलने की व्यवस्था की जा रही है। उसके लिये आप अपने यहाँ की निम्न जानकारी तुरंत भोपाल के पते पर भेजें।

(१) अपने मुमुक्षु मंडल के पदाधिकारियों के नाम, (२) स्थानीय वक्ताओं के नाम और संख्या, (३) आपके यहाँ प्रचारकार्य में कोई बाधा हो तो उसका विवरण, (४) आपके यहाँ वीतराग विज्ञान पाठशाला तथा महिला पाठशाला न हो तो शीघ्र प्रारंभ करने की व्यवस्था कर हमें सूचित करें; उसमें बाधा हो तो हमको लिखें, (५) आपका मंडल में एक-दो बार आसपास के ग्रामों तथा नगरों में जाकर धर्म प्रभावना के कार्य में सहयोग दे, मुमुक्षु मंडल न हो वहाँ स्थापित करने की प्रेरणा करें। आत्मधर्म मासिक पत्र के ग्राहकों की संख्या बढ़ावें और आपके द्वारा जो कार्य हुए हों, उनकी प्रतिमाह रिपोर्ट यहाँ भेजें। सूचनायें अवश्य भेजें। जिससे हम आपके संपर्क में आयें, योग्य स्थान पर विद्वान भेजकर धर्म प्रचार हो। आपके यहाँ जब किसी वक्ता की आवश्यकता हो या शिक्षण-शिविर आदि चलाना चाहें तो हमें लिखें। यह कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण होने से हम सभी ने मिलकर धर्मप्रभावना के लिये भरसक कोशिश करने का संकल्प किया है। अत: आप समस्त विवरण एक सप्ताह में भेजें, अपने सुझाव भी भेजें।

पता—श्री कन्हैयालाल डालचंद जैन सराफ, चौक बाजार
भोपाल (म.प्र.)

रतलाम—हमारी प्रार्थनानुसार श्री कनुभाई (दाहोद) की पर्यूषण पर्व पर भेजकर सारे-जैन समाज का बहुत ही उपकार किया है। कनुभाई की कितनी प्रशंसा करें? प्रतिदिन तीन बार तो प्रवचन, तुदपरांत तत्त्वचर्चा, शंका-समाधान करते थे। धर्म के गुप्त रहस्य को ऐसी सरल मृदु भाषा में समझाते थे जिसे मंदबुद्धि भी अपूर्व प्रेम सहित समझकर स्वीकार कर सकते थे। शास्त्रों का गहरा अध्ययन होने से प्रवचन के बीच-बीच में कई ग्रंथों में से आचार्यकथित आधार देते रहते थे। इतना आकर्षण बढ़ गया कि जो एकबार प्रवचन में आता, वह नियमितरूप से आने लग जाता था। जैन-अजैन श्रोताओं से प्रवचन-मंडप खचाखच भर जाता था। रात्रि की हमेशा जिनमंदिर में भक्ति का कार्यक्रम अति भाववाही आकर्षण का विषय

था। भक्ति की तो जितनी तारीफ की जाये उतनी कम है।

रोटरी क्लब में तारीख २२-९-७० को श्री कनुभाई को आमंत्रित किया गया था; नगर के प्रमुख अधिकारीगण एवं प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे। इतनी प्रभावना पर्यूषण पर्व पर पहले कभी नहीं हुई। सुननेवाले अपने को धन्य मानते थे। सबने आपका एवं संस्था का आभार प्रगट किया। आपकी ख्याति सुनकर बड़नगर से ४ आदमी समाज के मुखिया आये और बोले कि क्षमावाणी पर्व के दिन हम श्री कनुभाई का प्रोग्राम चाहते ही हैं; विशेष अनुरोधवश श्री कनुभाई बड़नगर गये। पूरे दिन प्रवचन, शंका-समाधान आदि कार्यक्रम रहा। जैन संख्या ११०० है, सब लोग इतने आत्मविभोर हुए कि कहा नहीं जा सकता, रोकने का भारी प्रयत्न किया, ठहरे नहीं। *— मोहनलाल छाबड़ा, सुगनचंद पाटनी*

जसवंतनगर (उ.प्र.)—श्री ज्ञानचंदजी वाणीभूषण (विदिशावाले) हमारे विशेष आग्रह पर ललितपुर जाते हुए पधारे। पंडितजी के प्रभावशाली प्रवचन सुनकर जैन समाज ने भारी प्रसन्नता और उपकार प्रगट किया। और काफी संख्या में आत्मधर्म के ग्राहक बने।

—नरेशचन्द्र जैन, मंत्री

माधोगंज (लश्कर-ग्वालियर)—हमारे यहाँ पर्व में श्री पंडित कपूरचंदजी तथा पन्नालालजी करेलीवालों को भेजकर बहुत लाभ पहुँचाया, जिसके लिये हम आभारी हैं। ज्ञानचंदजी विदिशा तथा पंडित धन्नालालजी द्वारा स्थापित मुमुक्षु मंडल के कार्य सुचारूरूप से विकास कर रहे हैं। बड़ा मंदिर डीडावना ओली तथा तेरापंथी मंदिर माधवगंज में प्रतिदिन प्रवचनादि कार्यक्रम रखा था। जैन समाज अत्यंत आभारी है। भिंड से लौटते समय श्री पंडित हिम्मतलालभाई भी पधारे थे। जैन सिद्धांत समझाकर स्वसन्मुख होने की प्रेरणा दी; आपने अपने अनेक कार्य छोड़कर इतने दूर तक १५ दिन के लिये आकर जैन समाज पर भारी उपकार किया है। —मंत्री, श्री दिगम्बर जैन तेरापंथी मंदिर,
माधवगंज तथा चितेराओली, लश्कर, ग्वालियर (म.प्र.)

श्रीमान प्रचार समिति अधिकारी महोदय, सोनगढ़

हमारे यहाँ पर श्री सुजानमलजी मोदी बड़ी सादड़ीवाले प्रतापगढ़ दशलक्षण पर्व पर प्रवचन करने के बाद पधारे। आपके प्रवचन से सभी साधर्मी बन्धुओं को लाभ मिला। आप दो

टाइम मुमुक्षु मंडल में प्रवचन करते थे। रात्रि को शहर के जूना मंदिरजी में प्रोग्राम रहता था। हम आभार प्रगट करते हैं। *— श्री मुमुक्षु मंडल, मंदसौर*

शमशाबाद (म.प्र.)—यह विदिशा निवासी पंडित ज्ञानचंदजी धर्म लाभ देने आते हैं। बच्चों में काफी जागृति के फलरूप एक वीतराग विज्ञान पाठशाला शुरु की गई है। आत्मधर्म मासिक के ग्राहक बनाय गये। जयपुर वीतराग विज्ञान विद्यापीठ को भी धन्यवाद।

—भँवरलाल जैन

अशोकनगर (म.प्र.)—रखियाल निवासी श्री पंडित नेमीचंदजी के पधारने से पर्वराज में आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से समस्त जैन समाज लाभान्वित हुआ। प्रतिदिन ७ घंटा का सुंदरतम धार्मिक उत्साहपूर्ण कार्यक्रम रहा। शंका-समाधान का समय २ से ५ बजे तक था। हजारों की संख्या ने आपका लाभ लेकर प्रसन्नता प्रगट की। क्षमावाणी पर्व के दिन विमानोत्सव हुआ। आसपास के क्षेत्रों से भी जैन बन्धु भारी संख्या में पधारे थे। ७ हजार से अधिक समूह को पंडितजी ने संबोधित किया। उसी दिन विदिशा निवासी वाणीभूषण श्री पंडित ज्ञानचंदजी पधारे थे। उनके प्रवचन का भी उपस्थित समाज ने लाभ लिया।

धर्मप्रेमी बंधुओं के अनुरोधवश पंडित श्री नेमीचंदजी यहाँ से पिपरई गाँव और ईसागढ़ गये। वहाँ भी पंडितजी ने अपने मार्मिक प्रवचन से श्रोताओं को मोह लिया। *—मुमुक्षु मंडल*

गुना (म.प्र.)—हमारे आग्रह पर फतेपुर निवासी श्री बाबूलालजी पधारे, सभी को बहुत प्रसन्नता हुई। एक ही लक्ष्य था-आत्मा का हित कैसे हो ? सादगीमय जीवन से जैनधर्म पालन की छाप आपके द्वारा हमारे हृदय पर अंकित हो गयी। फतेपुर निवासी श्री नाथाभाई राघौगढ़ पधारे थे। हमारे आग्रहवश यहाँ भी आये। श्री पूरनचंदजी जैन वकील की अध्यक्षता में आभार समारोह मनाया। गुना नगरपालिका के अध्यक्ष ने इन दोनों विद्वानों की विशेषता का परिचय दिया। उनके वचनों एवं भावों को आत्मसात करने की प्रेरणा दी, सम्मान पत्र दिया गया। *—केवलचंद पांडया*

पूना (महा.)—जैन समाज के अनुरोध से प्रचारक ब्रह्मचारी पंडित दीपचंदजी दसलक्षण पर्व पर पधारे। श्री दिगम्बर जैन शांतिनाथ मंदिर रविवार पेठ में कार्यक्रम हुआ; समाज ने बहुत प्रेम दर्शाया और टेपरील रेकार्डिंग मशीन द्वारा पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचन

सुनाकर तत्त्वज्ञान का स्पष्टीकरण किया। जैन शिक्षण, शंका-समाधान तथा जैन तीर्थक्षेत्रों की फिल्म प्रदर्शन का भी कार्यक्रम रखा था। आगामी साल में महावीर जयन्ती के अवसर पर जैन शिक्षण शिविर के लिये मांग की है।

निरा (महा.)—यहाँ भी समाज के प्रमुख व्यक्तियों का अच्छा सहयोग मिला। शास्त्रसभा, टेपरील द्वारा प्रवचन, तीर्थक्षेत्रों के दर्शन की फिल्म का कार्यक्रम भी तीन बार हुआ। एक कार्यक्रम जैन बोर्डिंग में रखा गया था, यहाँ के समाज ने भी महावीर जयंती के समय पर शिक्षण शिविर की मांग की है; यहाँ स्वाध्यायमंडल स्थापित होगा। यहाँ से बारामती, पणदरे, परली और फलटन जाऊँगा। *—दीपचंद जैन*

बारामती—यहाँ श्री एन.सी. जवेरी (अध्यक्ष श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट) की ओर से ब्रह्मचारी पंडित दीपचंदजी जो जैनधर्म के प्रचार को नि:स्वार्थ भाव से भ्रमण करते हैं। आपके द्वारा शास्त्रसभा, शंका-समाधान तथा टेपरील द्वारा स्वामीजी के प्रवचन तथा भक्ति-भजन का कार्यक्रम हुआ। छहढाला, मोक्षमार्गप्रकाशक, दस धर्म का स्वरूप और सिद्धांत ग्रंथों का परिचय दिया गया। समाज में तत्त्वजिज्ञासा बढ़ गई है।

पिपरई गाँव (म.प्र.)—सोनगढ़ से पंडित घासीलालजी कोटा निवासी यहाँ पधारे। आध्यात्मिक प्रवचन, शंका-समाधान सुनने के लिये हॉल भर जाता था। अंतिम दिन आभार विधि हुई थी। *—प्रेमचंद जैन*

लोहारदा (म.प्र.)—ब्रह्मचारी पंडित झमकलालजी सोनगढ़ से पधारे। पर्वराज सानंद मनाया गया। प्रवचन में यथार्थ ज्ञान-वैराग्य का मूर्तस्वरूप टपकता था। समाज ने अतिशय धर्मप्रेमसहित लाभ लिया। दसलक्षण पर प्रवचन करते थे। आपके आदर्श जीवन में पात्रता, सादगी, ब्रह्मचर्य का रंग, विशाल बुद्धि, आत्महित की सावधानी; जैनधर्म की महानतादि को हम हमेशा याद करते रहेंगे। सोनगढ़ में पूज्य स्वामीजी द्वारा निर्मल तत्त्वज्ञान मिल रहा है, हम आभार प्रगट करते हैं। *—मंत्री, जैन समाज*

राघौगढ़ (म.प्र.)—श्री पंडित नाथालालजी फतेपुरवाले विशेष आमंत्रण पर पधारे थे। आपके द्वारा १० दिन तक धार्मिक कार्यक्रम बड़े उल्लासपूर्वक चलते रहे। जिनमंदिर में भक्ति का कार्यक्रम विशेष आकर्षक रहता था। प्रवचनों के उपरांत तत्त्वचर्चा का भी अच्छा

कार्यक्रम रहा। सबने पंडितजी का आभार व्यक्त किया। यहाँ से पंडितजी गुना पधारे।

— सुशीलकुमार

सागर (म.प्र.)—श्री पंडित चिमनलाल ताराचंदजी को सोनगढ़ से विशेष आमंत्रण देकर समाज ने पर्व के दिनों में बुलाया। आपने पूज्य कानजीस्वामी द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित अनेकांत सिद्धांत को अच्छी तरह सुगम शैली से बतलाया। समझाने की शैली विशेष आकर्षक है। आपके प्रवचन में ८०००, तक श्रोतागण लाभ लेते थे। हमेशा छह घंटा तक कार्यक्रम शंका-समाधान, शिक्षणकक्षा तथा प्रवचन के रूप में चलता रहा। आप चहाँ से ललितपुर होकर तलोद में विशाल जैन शिक्षण शिविर में सम्मिलित होंगे। *—ताराचंद गंगवाल*

धरणगाँव (महा.)—पर्वराज सानंद मनाया गया। नियमित धार्मिक प्रवचन, स्वाध्याय, पूजादि हुए। तारीख २७-९-७० को वीतराग विज्ञान पाठशाला का उद्घाटन श्री छगनलालजी जैन की अध्यक्षता में हुआ। सौ. प्रेमकमल जैन संचालिका द्वारा सुचारूरूप से पाठशाला चल रही है। जैनगणना समिति का हर जगह गठन हो रहा है। *—छगनलाल जैन*

बड़नगर (म.प्र.)—श्री कनुभाई रतलाम से क्षमावाणी पर्व के दिन हमारे यहाँ पधारे। पूरे दिन व्यस्त कार्यक्रम रहा। आपके प्रवचन से जैन-जैनेतर जनता खूब प्रभावित हुई। आपके आध्यात्मिक भजनों ने सबको आकर्षित किया। *—भागचंद काला*

बीना (बजरिया)—यहाँ पर्व में श्री पंडित रतनचंदजी एवं उनकी विदुषी धर्मपत्नी द्वारा दस दिन तक हमेशा ६ घंटे के कार्यक्रम से जैनसमाज को अच्छा धर्मलाभ मिला। पंडितानी श्री कमला बहिन ने महिला समाज में अच्छी जागृति की; वीतराग विज्ञान पाठशाला का उद्घाटन किया। समाज ने सोनगढ़ का तथा आपका खूब उपकार प्रगट किया। वाराणसी से पंडित कैलाशचंदजी शास्त्री पधारे थे, उनका भी प्रभावशाली प्रवचन हुआ था। तारीख २१-९-७० से सोनगढ़ निवास पंडित चिमनलालजी सागर से ललितपुर, मुगावली होते हुए विशेष आग्रहवश यहाँ पधारे। ४ दिन तक आपके प्रवचन हुए। सब स्त्री-पुरुष मंत्रमुग्ध होकर सुनते थे। एक दिन इटावा के मंदिर में भी बहुत बड़ी सभा में प्रवचन दिया था। आपकी शैली से जगह-जगह धार्मिक रुचि बढ़ रही है। लश्कर निवासी पंडित धन्नालालजी तारीख २६-९-७० को बीना पधारे, तीन प्रवचन हुए, आपकी अनुभवजन्य शैली से धर्म का स्वरूप

भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है। —*कमलकुमार जैन*

अध्यक्ष, दिगम्बर जैन मंदिर, बीना (म.प्र.)

आगरा (उ.प्र.)—पर्यूषण पर्व पर हमारे समाज के आमंत्रण पर श्री मधुकरजी भोपाल से पधारे थे तथा श्री नेमीचंदजी पाटनी द्वारा धार्मिक प्रवचनों का कार्यक्रम विभिन्न जिन-मंदिरों में होता था। प्रवचन के समय मंदिर श्रोताओं से भर जाता था। विशाल भीड़ एकाग्रचित्त से सुनती थी। आपने अनेक शंकाओं का समाधान किया। टोडरमलजी स्मारक भवन जयपुर विद्यापीठ का आयोजन चार स्थानों पर हुआ है। श्री मधुरकजी के कार्यक्रमों से लोग खूब प्रभावित हुए। —*पद्मचंद जैन तथा छीपीटोला,*

मोती कटरा, कचैरी घाट नमक मंडी के प्रचार मंत्री

मल्हारगढ़ (मंदसौर, म.प्र.)—श्री पंडित सुजानमलजी साहब प्रतापगढ़-मंदसौर होकर हमारी प्रार्थना पर ४ दिन के लिये पधारे। प्रतिदिन २ घंटे प्रवचन एवं तत्त्वचर्चा तथा शंका-समाधान का कार्यक्रम उत्साहपूर्वक चला। सर्वज्ञ वीतराग कथित वस्तुस्वरूप का समाज ने अच्छा लाभ किया। श्री पंडितजी नारायणगढ़ भी तीन दिन के लिये पधारे। वहाँ भी उपरोक्त सभी कार्यक्रमों में लोगों ने उत्साह सहित भाग लिया। अच्छी प्रभावना हुई।

—*दिगम्बर जैन समाज, मल्हारगढ़ तथा नारायणगढ़*

शिकोहाबाद (जि. मैनपुरी)—सहारनपुर से पंडित श्री देवचंदजी लिखते हैं कि मैं इस पर्व पर प्रवचन देने गया था। कार्यक्रम अच्छा रहा। जनता ने सोनगढ़ द्वारा जैनधर्म के प्रचार की प्रशंसा की; पूज्य कानजीस्वामी के प्रति कृतज्ञता प्रगट की। सर्वज्ञ वीतराग द्वारा कथित सम्यग्ज्ञान का यथार्थरूप में प्रचार हो रहा है, उसका श्रेय पूज्य स्वामीजी को है।

—*प्रो. देवचंद जैन*

बम्बई—मुंबादेवी रोड, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के आमंत्रण पर भावनगर निवासी श्री शशिभाई पधारे थे। धार्मिक प्रवचनादि एवं तत्त्वचर्चा का अच्छा कार्यक्रम रहा। दादर के जिनमंदिर में भी आपका प्रवचन हुआ था। —*मंत्री, मुमुक्षु मंडल*

मलाड (बम्बई)—पर्वराज उत्साहपूर्वक मनाया गया। श्री प्राणलालजीभाई दादर से आते थे। श्रोताओं की संख्या करीब ६०० तक रहती थी। इस वर्ष विशेष उत्साह देखा गया।

लोगों में धार्मिक रुचि बढ़ रही है। जैन पाठशाला नियमितरूप से चल रही है। करीब ७५ बालकों की उपस्थिति रहती है। मंदिर के कार्यों को चंदा भी अच्छा हुआ।

—अमृतलाल शाह, मंत्री

बोटाद (सौराष्ट्र)—पर्यूषण पर्व में समाज के आमंत्रण पर श्री शांतिलाल भाई राजकोटवाले (हाल-सोनगढ़) पधारे थे। प्रवचनादि सभी कार्यक्रम नियमित रूप से चलते थे। हम पूज्य स्वामीजी के आभारी हैं। *—दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल*

सुवर्णपुरी (सोनगढ़) समाचार

पूज्य श्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। सवेरे श्री अष्टपाहुड़ पर एवं दोपहर को श्री समयसारजी पर प्रवचन होते हैं। जिन्हें सुनकर श्रोताजन आत्मविभोर हो जाते हैं। दीपावली का अवसर होने से बाहर के अनेक लोग सोनगढ़ आते रहते हैं और यहाँ के शांत अध्यात्ममय वातावरण से प्रभावित होते हैं। विशाल एवं भव्य परागम मंदिर के निर्माण का कार्य जोरों से चल रहा है।

आवश्यक सूचना

आत्मधर्म के छह अंक (वैशाख से आश्विन तक के) स्टाक में न होने के कारण नये ग्राहक कार्तिक से चैत्र तक छह महीने के लिये ही बनाये जाते हैं। यदि आप आत्मधर्म का चंदा भेज रहे हों तो छह महीने का १-५० डेढ़ रुपया ही भेजें। जिन सज्जनों ने ३/ तीन रुपये भेजे हैं, उनका १-५० डेढ़ रुपया जमा रहेगा। शेष १-५० डेढ़ रुपया आगामी अप्रैल में भेजने से उन्हें एक वर्ष तक आत्मधर्म नियमित मिलता रहेगा।

प्रेषक—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

लाख बात की बात

[मोक्षमार्ग के लिये भूतार्थरूप शुद्धात्मा को लक्ष्य में लो]

जिज्ञासु शिष्य पूछता है कि—प्रभो! सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट हो? उसे आचार्यदेव समझाते हैं कि भूतार्थरूप शुद्धनय के द्वारा शुद्धात्मा की अनुभूति करने पर सम्यग्दर्शन होता है; अशुद्धात्मा को दिखानेवाला सब व्यवहारनय अभूतार्थ है, क्योंकि वह आत्मा के अशुद्धरूप को बतलाता है, आत्मा के शुद्धस्वरूप को वह नहीं बतलाता। वर्तमान प्रगट दशा में-पर्याय में कर्मों का संबंध और राग-द्वेषादि अशुद्धभाव हैं, वह व्यवहारनय का विषय है; वह अशुद्धभाव आत्मा की अनित्य अवस्था में होने पर भी शुद्धनय द्वारा देखने पर उन भेदों से रहित अभेद शुद्धस्वरूप आत्मा अनुभव में आता है; और ऐसे शुद्धात्मा का अनुभव करते ही सम्यग्दर्शन होता है।

समयसार की ११वीं गाथा जैनशासन का प्राण है; उसमें सम्यग्दर्शन का सरल उपाय आचार्यदेव ने बतलाया है।

व्यवहारनय अभूतार्थ है अर्थात् क्या?—कि व्यवहार जितना ही आत्मा मानने से शुद्धात्मा अनुभव में नहीं आता; अतः सम्यग्दर्शन के लिये वह व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं; शुद्धात्मा ही आश्रय करनेयोग्य है, कारण कि उसी के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। मोक्षमार्ग निज शुद्धात्मा के आश्रय से ही प्रगट होता है, वृद्धि और पूर्णता भी उसी के आलम्बन से है। अतः शुद्धात्मा का स्वरूप दर्शानेवाला शुद्धनय ही भूतार्थ है और व्यवहारनय सब अभूतार्थ है।

कर्मों का संबंध बतलानेवाला व्यवहारनय हो या अशुद्ध पर्याय को बतलानेवाला व्यवहारनय हो, निर्मल पर्याय के भेद या गुण-गुणी के भेदरूप शुद्ध व्यवहार का विकल्प हो—उन किसी के आश्रय से आत्मा का सम्यग्दर्शन नहीं होता; एकरूप जो भूतार्थ शुद्ध स्वभाव, उसी के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है और वह निरपवाद नियम है।

शुद्धनय स्वयं पर्याय है; किंतु उनका विषय अखंड शुद्ध आत्मा है; यहाँ अध्यात्म शैली

में नय और नय का विषय दोनों को अभेद गिनकर 'शुद्धनय भूतार्थ है' ऐसा कहा है, कारण कि शुद्धनय की पर्याय अंतरंग में अभेद होती है। 'ज्ञान आत्मा है'—ऐसे गुणभेद के सूक्ष्म विकल्पों द्वारा आत्मा को ग्रहण नहीं किया जाता तो फिर अन्य अशुद्धता के स्थूल विकल्पों की तो बात ही क्या? अतः व्यवहार के जितने भी भेद हैं, वे सब आश्रय योग्य नहीं हैं; और शुद्ध निश्चय जो एक ही प्रकार है, वही एक आश्रय करनेयोग्य है। उस एक स्वभाव को देखनेवाली अभेद दृष्टि में कोई भेद दिखाई नहीं देते अर्थात् विकल्पों की उत्पत्ति नहीं होती; अभेद अनुभव में अतीन्द्रिय आनंद और निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह सब आ जाते हैं; वही मोक्षमार्ग है; व्यवहार के आश्रित मोक्षमार्ग नहीं है। शुद्धनय भूतार्थ है और उसी के आश्रय से धर्मी जीव मोक्षदशा की प्राप्ति करता है।

एक ओर शुद्ध आत्मा त्रैकालिक एकरूप; वह एक ही भूतार्थ है; और उसके सामने व्यवहार के अनेक भेद, वे सब अभूतार्थ हैं; पर्याय में व्यवहार अवश्य है, वह कहीं सर्वथा नास्तिरूप नहीं है; किंतु उस व्यवहार के आश्रय से आत्मा का अनुभव किया जाये तो अशुद्धता का अनुभव होता है और सम्यग्दर्शनादि प्रगट नहीं होते; इसलिये सम्यग्दर्शन के लिये वह व्यवहार अभूतार्थ है। शुद्ध आत्मा का निर्णय कौन करता है?—उसका निर्णय तो शुद्ध स्वभावोन्मुख हुई पर्याय ही करती है। किंतु उस पर्याय के भेद करके देखने पर शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं होता; अतः व्यवहार को अभूतार्थ कहा है। भगवान आत्मा सदा पूर्ण आनंद से भरा हुआ एकरूप है—उसके आश्रय से सम्यग्दर्शनादि प्रगट होते हैं, इसलिये कहा है कि—

लाख बात की बात यहै निश्चय उर लाओ,
तोड़ सकल जगदंदफंद निज आतम ध्याओ॥

अहो, यह क्षणभंगुर जीवन! क्षण में आयु पूर्ण करके जीव अन्यत्र चले जाते हैं, उसमें ऐसा सच्चिदानंद आत्मा लक्ष्यगत करनेयोग्य है; वही जन्म-मरण मिटाने की तथा मोक्ष को प्राप्त करने की रीति है। अरूपी चैतन्य आत्मा को ऐसे शरीर धारण करना, यह तो बड़ी लज्जा है। आत्मा तो अशरीर है, उसे जन्म-मरण कैसा? इसलिये योगसार दोहा में कहा है कि—

नाक-दृष्टि रख देखते, जो अंतर अशरीर।
वे न जन्म फिर धारते, पियें न जननी-क्षीर॥६०॥

परसंयोग-अशुद्धता और भेद के लक्ष्य से तो जीव को दु:ख उत्पन्न होता है, और परमानंदरूप सुख तो निज शुद्धात्मा के लक्ष्य से ही उत्पन्न होता है, इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीवो! तुम अपने भूतार्थस्वभाव को जानकर उसी का आश्रय करो। वही कल्याण का उपाय है, अन्य सब असत्य है, अकल्याण है।

जल का दृष्टांत देकर आत्मा का शुद्धस्वरूप समझाते हैं कि जिसप्रकार पानी का निर्मल स्वभाव है, कीचड़ उसका स्वभाव नहीं है; उसीप्रकार आत्मा ज्ञायकस्वभावरूप एक शुद्धवस्तु है, वह भूतार्थ है, और संयोगी भाव या भेद के विकल्प आत्मा का स्वरूप नहीं है। जिसप्रकार स्वच्छ जल और मलिन कीचड़—इन दोनों का भेद नहीं पहचाननेवाले अनेक जीव तो जल को मैला ही अनुभव करते हैं; और कितने जीव अपने हाथों से निर्मली नामक औषधि डालकर जल और कर्दम को भिन्न करके, स्वच्छ जल का अनुभव करते हैं; यहाँ उसकी वर्तमान दशा में कर्मों का संग करने से अशुद्धता है; इसलिये ज्ञायकभाव ढँक गया है—पर्याय में प्रगट नहीं हैं। वहाँ अशुद्धता को ही देखनेवाले; व्यवहार में ही विमोहित हृदयवाले अज्ञानीजन आत्मा को अशुद्ध, अनेकरूप ही अनुभव करते हैं, एकरूप ज्ञायकभाव को पहचानते ही नहीं। किंतु विरल जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे ज्ञानी जीव तो निर्मली औषधि जैसे शुद्धनय के द्वारा आत्मा और कर्म की अत्यंत भिन्नता को जानकर, शुद्ध आत्मा को देखते हैं, शुद्धनय के बोधरूप भेदज्ञान द्वारा परभावों से भिन्न ऐसे ज्ञायकभाव का प्रगट अनुभव करते हैं। वे ही शुद्धनय द्वारा सत्यार्थ आत्मा को सम्यक् प्रकार से देखनेवाले होने से सम्यग्दृष्टि हैं। किंतु जो ऐसे शुद्ध आत्मा को नहीं देखते और व्यवहार का आश्रय करके आत्मा को अशुद्ध ही अनुभव करते हैं, वे सम्यग्दृष्टि नहीं। शुद्ध आत्मा की पहचान-अनुभव किये बिना अन्य प्रकार से सम्यग्दर्शन नहीं होता।

अहो! आचार्यदेव ने इस गाथा में सम्यग्दर्शन का स्वरूप बतलाकर जैनदर्शन का रहस्य खोल दिया है। लाख बात की एक बात है कि—हे जीवो! मोक्षमार्ग के लिये शुद्धनय द्वारा शुद्ध आत्मा को जानकर उसी का आश्रय करो।

सिद्ध और साधकदशा

दीपावली के दिन प्रवचन में पूज्य गुरुदेव ने कहा कि भगवान महावीर आज के दिन मोक्ष पधारे थे; भगवान ने सर्वोत्कृष्ट सिद्धदशा प्राप्त की थी; उनको पूर्ण ज्ञान-आनंद तथा पूर्ण शुद्धता प्रगट हो गई है। अज्ञानी मात्र विकार में वर्त रहा है, उसको धर्म का अंश भी नहीं है।

अब, मध्य की जो स्थिति है, वह साधकदशा है। जिसमें अंशतः शुद्धतारूप धर्म प्रगट हुआ है तथा अंशतः अशुद्धता भी शेष है।—किंतु उस अशुद्धता को साधक क्षणिक पर्यायरूप जानता है, तथा त्रैकालिक स्वभाव शुद्ध है, उसके अवलंबन से शुद्धता की वृद्धि करता रहता है। ऐसी साधकदशा में कितना धर्म हुआ, कितनी शुद्ध हुई तथा कितनी अशुद्धता शेष है—इन सभी का ज्ञान साधक को वर्तता है। वह शुद्ध-अशुद्ध सभी भावों को जानते हुए भी शुद्ध दृष्टि के द्वारा अपने आत्मा का शुद्ध चिन्मात्र अनुभव करता है।

धर्मी को तो ज्ञानचेतनारूप परिणमन हुआ, उसमें तो हर्ष-शोक का वेदन नहीं है किंतु अभी जितनी कर्मचेतना या कर्मफलचेतना है, उतना रागादि का कर्तापना है, हर्ष-शोक का भोक्तापना है। दोनों भाव एकसाथ एक पर्याय में वर्तते हैं। पर का कर्तृत्व या भोक्तृत्व तो अशुद्ध भाव से भी नहीं है; जो भी देह की क्रिया है—चलना-फिरना-बोलना-उठना-बैठना-खाना-पीना, वे सब पुद्गल की क्रियाएँ हैं; जीव उनका कर्ता नहीं है। जीव चेतनभाव का ही कर्ता है; चेतना ही उसकी क्रिया है। उसको भूलकर अज्ञानी मात्र रागादि की क्रिया को करता है; जड़ की क्रिया को तो वह भी नहीं कर सकता। जीव की पर्याय में जो शुद्ध-अशुद्ध भाव हों, उन्हें जानकर, भेदज्ञान के बल से आत्मा का शुद्ध चैतन्यमात्र अनुभवन करना—यह आत्मप्राप्ति की रीति है; यही साधकदशा है, इसका प्रारंभ ही सच्ची दीपावली है।

जनगणना के अवसर पर

१९७१ के मार्च महीने में होनेवाली जनगणना में जाति के
१० नंबर खाने में 'जैन' शब्द लिखवाइये।

- हम जैन.... अर्थात् जिनवर की सन्तान... जिनेश्वर देव के अनुयायी।
- संपूर्ण भारत में जैनों का निवास है... इनकी कुल संख्या लगभग एक करोड़ है।
- जैनधर्म ने भारत देश को उच्च कोटि के अध्यात्म-संस्कार तथा वीतरागी परम अहिंसा प्रदान की है... जार्ज बर्नाडश जैसे विदेशी विद्वान भी जैनधर्म से प्रभावित हुए हैं। राष्ट्रनेता महात्मा गाँधीजी ने जिनके पास से आर्य-संस्कार की प्रेरणा ली, वे श्रीमद् राजचंद्रजी भी जैनधर्म के मर्मज्ञ थे। राणा प्रताप द्वारा मेवाड़ को फिर से स्वाधीन कराने में महत्त्व की सहायता—दान देनेवाले वीर भामाशाह भी जैन ही थे। इस भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में भी गाँधीजी एवं कांग्रेस को सर्वप्रकार सहायता देने में गुजरात के जैनों का मुख्य सहयोग था जो सर्व-विदित है।
- महागुजरात की तीन करोड़ की जनसंख्या में सात-आठ लाख तो जैन ही हैं। अकेले अहमदाबाद में भी लाख से ऊपर जैनियों का निवास है। भावनगर, जामनगर, राजकोट इत्यादि शहरों में भी अधिक संख्या में जैनियों का निवास है। राजस्थान में भी जयपुर, अजमेर, उदयपुर इत्यादि शहरों में जैनियों की संख्या अधिक है। मध्यप्रदेश में इंदौर, जबलपुर, उज्जैन, भोपाल, भिंड, सागर, दमोह, बीना, लश्कर, ग्वालियर इत्यादि शहरों में जैन अधिक संख्या में पाये जाते हैं तथा उ.प्र. में, दिल्ली, आगरा, फिरोजाबाद, जसवंतनगर, इटावा, कानपुर, ललितपुर, झाँसी आदि तथा कलकत्ता में भी जैन अधिक संख्या में पाये जाते हैं। अकेली बम्बई में ही दो लाख से अधिक संख्या जैनियों की है। महाराष्ट्र में भी जैनियों की संख्या अधिक है। कलकत्ता में प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा की रथयात्रा में लाखों जैनियों का मेला भरता है। देहली में भी जैनियों

की अधिक संख्या है। कोल्हापुर-सोलापुर लाइन में तो कई गाँव में ६० से ८० प्रतिशत जैनधर्म को माननेवाले हैं जो बहुत बड़ी संख्या है, किंतु प्रायः वे अपने को जैन लिखवाते ही नहीं। संपूर्ण दक्षिण प्रदेश कितने ही लाख जैनियों की आबादी से तथा प्राचीन जैन वैभव से भरा हुआ है। दक्षिण प्रदेश के विपुल जैन-वैभव से हम आज तक इतने अनभिज्ञ रहे कि कुन्दकुन्दस्वामी की भूमि पोन्नूर का जहाँ प्रतिवर्ष लाखों का मेला लगता है तथा जिसके आसपास कोसों तक जैनियों की आबादी है, ऐसे पोन्नूर का नाम भी हम पंद्रह-बीस वर्ष पहले नहीं जानते थे। पूज्य श्री कानजीस्वामी ने जब दक्षिण देश की तीर्थयात्रा की, तब स्थान-स्थान पर अपने लाखों जैन भाईयों को आँखों से देखा, तथा दक्षिण में जैनधर्म के वैभव का किंचित् ज्ञान हुआ। आर्काट जिला (पोंडिचेरी) में ८००० घर जो जाति अपेक्षा ब्राह्मण हैं, वे जैनधर्म का ही पालन करते हैं। जो अपने को उपाध्याय लिखाते हैं।

इसप्रकार एक करोड़ जितनी जैनों की आबादी से भारत देश शोभायमान हो रहा है। सरकारी कार्यालयों में यदि वास्तविक संख्या जैनियों की अंकित हो तो अपन कितने ही सामाजिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। अब इसके लिये अपना जैन समाज जागृत होकर आगामी जनगणना के समय फार्म के दसवें खाने में अपने को 'जैन' लिखवाये, यह अति आवश्यक है। आप जैन के चाहे जिस समुदाय में हों—चाहे दिगम्बर हों या श्वेताम्बर, मन्दिरमार्गी हों या स्थानकमार्गी किंतु जनगणना के फार्म में केवल 'जैन' ही लिखवाना चाहिये। जिसप्रकार भारत में अनेक जाति के लोग निवास करते हैं, किंतु विदेशी आक्रमण के सामने सभी 'भारतीय' होकर खड़े रहते हैं, इसीप्रकार सामाजिक क्षेत्र में अपन सभी 'जैनों' को एक होकर खड़े रहना चाहिये, हमें जिनशासन के पवित्र झंडे को अधिक से अधिक ऊँचा फहराना है।

वीर प्रभु के निर्वाण की ढाई हजारवीं जयंती के महोत्सव के लिये भी सभी को परस्पर मिलकर तैयार होना है। इस पवित्र अवसर को याद करके एकता तथा स्नेह का आदर्श वातावरण निर्मित करना है और अपनी सर्व शक्ति से जैनसमाज तथा जिनधर्म की उन्नति में ही लगना है।

। जैनं जयतु शासनम्।

आध्यात्मिक पद

[रचयिता : कविवर पंडित दौलतरामजी]

ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै, सो फेर न भव में आवै ।।ऐसा० टेक ।।

संसय विभ्रम मोह-विवर्जित, स्वपर स्वरूप लखावै।
लख परमातम चेतन को पुनि कर्मकलंक मिटावै ।।ऐसा० ।।१ ।।

भवतनभोग विरक्त होय तन, नग्न सुभेष बनावै।
मोहविकार निवार निजातम—अनुभव में चित लावै ।।ऐसा० ।।२ ।।

त्रस थावरबध त्याग सदा परमाददशा छिटकावै।
रागादिकवश झूठ न भाखै, तृणहु न अदत गहावै ।।ऐसा० ।।३ ।।

बाहिर नारि त्यागि अंतर चिदब्रह्म सुलीन रहावै।
परमाकिंचन धर्मसार सो, द्विविध प्रसंग बहावै ।।ऐसा० ।।४ ।।

पंच समिति त्रय गुप्ति पाल व्यवहार-चरनमग धावै।
निश्चय सकल कषायरहित है, शुद्धातम थिर थावै ।।ऐसा० ।।५ ।।

कुंकुं पंक दास रिपु तृण मणि, व्याल माल सम भावै।
आरत रौद्र कुध्यान विडारे, धर्मशुकल को ध्यावै ।।ऐसा० ।।६ ।।

जाके सुख समाज की महिमा कहत इंद्र अकुलावै।
'दौल' तास पद होय दास सो, अविचल ऋद्धि लहावै ।।ऐसा० ।।७ ।।

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	,, ,, ,, भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	शास्त्र का अर्थ समझने की पद्धति	०.१०
१७	श्रावक धर्मप्रकाश	२.००
१८	अष्ट-प्रवचन (भाग-१)	१.५०
१९	अष्ट-प्रवचन (भाग-२)	१.५०
२०	मोक्षमार्गप्रकाशक	२.५०
२१	पं. टोडरमलजी स्मारिका विशेषांक	१.००
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२४	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२६	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
२७	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-३	०.६५
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	३.२५
२८	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२९	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
३०	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र)	६.००
३१	मोक्षमार्गप्रकाशक ७वाँ अध्याय	०.५०
३२	जैन बालपोथी भाग-२	०.४०
३३	अष्टपाहुड़ (कुन्दकुन्दाचार्यकृत) पं. जयचंदजीकृत भाषावचनिका	प्रेस में
३४	तत्त्वनिर्णय	०.२०
३५	शब्द-कोष	०.२०
३६	हितपद संग्रह (भाग-२)	०.७५

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)